सभी पंचायतोंके
स सुझावका जोर-
ा। इसी सभामें
संघकी स्थानीय
शाखा खोली गयी।

उड़ान क्लबों की समिति

नयी दिल्ली, २ जुलाई। उड़ान और ग्लाइडिंग क्लबों की सहायता देने की वर्तमान प्रणाली की जांच करने के लिये भारत सरकार ने जो समिति नियुक्त की है, वह ३ जुलाई २० जुलाई के बीच तिरुअनन्तपुरम्, कोयमुत्तूर, बंगलोर, मद्रास और हैदराबाद जाएगी।

सर्वश्री श्री. नारायणस्वामी, लेफ्टिनेंट कर्नल जी० वी० राजा और मिर्जा क्रमशः इसके अध्यक्ष और सचिव हैं। समिति ३ से पांच जुलाई तक तिरुअनन्तपुरम् में ६ और ७ जुलाई को कोयमुत्तूर में, ९ से ११ जुलाई तक बंगलोर में, १२ से १६ जुलाई तक मद्रास में और १४ से २० जुलाई तक हैदराबाद में रहेगी।

समिति उड़ान और ग्लाइडिंग में रुचि रखने वाले लोगों से मिलने और उनके विचार जानने के लिये इन स्थानों पर जा रही है।

अन्तर्राष्ट्रीय विकास ... डालरका

नयी दिल्ली, १ जुलाई। विश्व बैंकसे सम्बद्ध संस्था अन्तर्राष्ट्रीय विकास असोसियेशनने आज भारतको विकास कार्यके लिए १ करोड़ ५० लाख डालरका ऋण दिया है। इससे पश्चिम बिहारमें सोन सिंचाई प्रणालीको सुधारने तथा बढ़ानेकी योजना चलाई जायगी, जिसके फलस्वरूप लगभग १० लाख एकड़ जमीनमें सिंचाई होने लगेगी। सिंचाई व्यवस्था होनेसे खास तौर पर धानकी उपज दुगनी हो जायगी, जिससे वहांके किसानोंकी आर्थिक हालत सुधरेगी। यह ऋण ५० वर्षमें चुकाया जायगा और इस पर कोई ब्याज नहीं लगेगा। पूंजी १ जनवरी, १९७३ से चुकानी शुरू की जायगी। दस वर्ष तक हर साल पूंजीका एक प्रतिशत और बाकी तीस वर्ष तक हर साल तीन प्रतिशत चुकाया जायगा।

राष्ट्रिय छात्रवृत्ति योजना

नयी दिल्ली, १ जुलाई। पंजाब विश्वविद्यालय की मेट्रिक परीक्षाफल के आधार पर जिन लड़कोंको राष्ट्रिय

वहां पर मूल्य वृद्धि का सामना नहीं करना पड़ेगा।

आप ने आगे कहा कि भारत में भी चूंकि लोहे के पांच कारखानों में से चार सरकारी हैं अत लोहे का मूल्य स्थिर है। इसी प्रकार चीनी सिंडिकेट बन जाने पर चीनी की मूल्य वृद्धि भी रुक गयी है।

इसके लिए लोकसभा के कांग्र सज्जनों ने एक समिति गठित की है। समिति शीघ्र ही अपना कार्य प्रारम्भ कर देगी।

श्री आनन्द बहादुर सिंह ने प्रारम्भ में श्री रघुनाथ सिंह एम० पी० का पुस्तकालय की ओर से स्वागत किया।

तापमान पुनः १०६ अंश पहुंचा

भीषण गर्मीसे जनता त्रस्त—कारोबार ठप

वाराणसी, रविवार। इधर कुछ दिनोंसे पुनः सख्त गर्मी पड़ने लगी है। न दिनमें चैन न रातमें राहत। चौबीसों घण्टे जनता गर्मीसे परेशान होकर वर्षाकी इन्त-जारी कर रही है। धूप भी कड़ी हो गयी है। बिजलीके पंखे हवा देते थकसे गये हैं। ताड़के ... भी अपनेको दुर्भाग्यहीन सम-झने लगे हैं। 'शाम होते ही लोग गंगाकी तट एवं मालवीय पुल पर हवा लेनेके लिए जाते हैं पर वहां भी उन्हें शांति नहीं मिल पाती। ... कड़ी गर्मीसे बहुतसे कार्य रुक गये हैं। यह भी देखा जा रहा है कि 'इधर कुछ दिनोंसे कुछेक मुहल्लेमें शाम होते ही नलोंका पानी आना बन्द हो जाता है। लोग गर्मीसे परेशान तो है ही पर इस तरह जल कल विभागकी ओरसे बिना सूचना दिये ही इस तरह पानी बन्द कर देनेसे लोग कुआं एवं सरकारी पाइपों पर स्नान एवं पानी भर अपने घरोंका काम चला रहे हैं।

तीन झगड़ालू गिरफ्तार

वाराणसी, रविवार। आदमपुर थानेकी पुलिसने कल ग्राम टंड़ियामें एक खेतके प्रश्न पर आपसमें झगड़ा करते समय तीन व्यक्तियोंको धारा १५१ में गिरफ्तार किया।

काशी...

श्री...

वारा... स्वतन्त्रता... एवं हिन्दी... दास टण्ड... चार आज... गया। का... स्थान-स्था... के कार्यां... वार होने... ओंके का... आप बं... संस्थाएं... अधिकारी... करनेके ... जायगी... सायंका... जिसमें... स्वर्गीय... अर्पित...

ट... नेताओं...

ॐ

जीवनमुक्त गीता

जिसके अवलोकन से योग साधन द्वारा प्राणी परम पद प्राप्त कर सकता है।

लेखक तथा प्रकाशक—

श्री १०८ योगिराज पं० रामनसीब ब्रह्मचारी

पुस्तक मिलने का पता—

श्री विन्ध्येश्वरी पुस्तकालय

पो० मु० विन्ध्याचल, मीरजापुर। (उत्तर प्रदेश)

सं० २०१० महाकुम्भ के शुभ मुहूर्त पर

प्रथमवार १०००] [मूल्य १)

॥ ॐ ॥

अथ जीवन्मुक्त गीता

जिसके अवलोकन से योग साधन द्वारा प्राणी परम पद प्राप्त कर सकता है।

लेखक व प्रकाशकः—

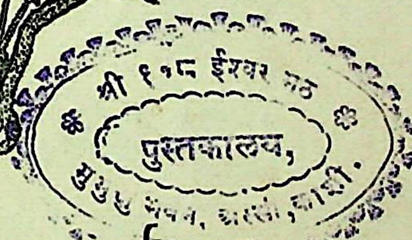
श्री १०८ योगिराज रामनसीव ब्रह्मचारी जी

सि० माघ सुदी पूर्णिमा वार शुक्रवार

सम्वत् २०१०

महा कुम्भ के शुभ मुहूर्त पर



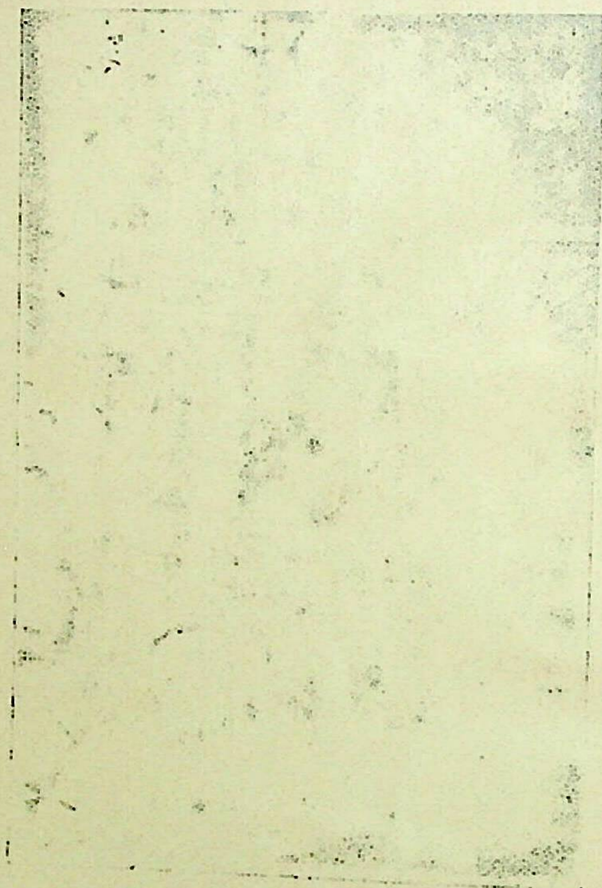


प्रथम आवृत्ति १००० } सर्वाधिकार सुरक्षित { मूल्य १)

अथ जीवन्मुक्त गीता

चित्र श्री कृष्ण जो का है

जिनके दर्शन से जीव के जन्मान्तरीय अकर्म से मुक्त होजाता है अर्थात शोक मोहादि से छूट जाता है।



भूमिका

उपनिषद, ब्रह्मसूत्र, गीता, ये वेदान्त दर्शन के तीन प्रस्थान हैं जिन्हें प्रस्थानत्रयी कहते हैं। इनमें उपनिषद श्रवणात्मक ब्रह्मसूत्र मननात्मक और गीता निदीध्यात्मक है। भगवान श्री कृष्ण जी ने भारतवर्ष के कुरूक्षेत्र नामक रण प्राङ्गणमें अर्जुनको अपनी भगवत गीता सुनाई और यों अर्जुन को निमित्त बनाकर सारे संसार को वह दिव्य उपदेश प्रदान किया। गीता का मूल श्रोत महाभारत है। जो एक प्रकार का विश्व कोष है। गीता महाभारत की मुकुटमणि है। गीता विश्व संस्कृति की कुञ्जी है। गीता के प्रकाशक स्वयं भगवान श्री कृष्ण जी हैं। वह समूची मानव जाति का धर्म ग्रन्थ है। इसमें योग साधन द्वारा मानव अपने उद्देश की पूर्ती कर सकता है, इसी को श्री ब्रह्मचारी जी महाराज ने सूक्ष्म और सरल भाषा में और अल्प समय में ही जीवनमुक्त हो ऐसी क्रिया का सम्पादन किया है। श्री ब्रह्मचारी जी महाराज ने जीवन्मुक्त गीता लिख कर मानव जाति के लिये महान कार्य किया है



शुद्धि पत्र

पृष्ठ		अशुद्ध	शुद्ध
६	श्लोक ३३	योग्यं	योयं
२१	अंतिम पंक्ति	यो पढ़िये—	ॐ तत्सदिति श्री जीवन्मुक्त गीतायां श्रीकृष्णार्जुन संवादे नासिकाग्र दर्शनोनाम प्रथमोध्यायः ।
२२	पंक्ति ६	सोकर	होकर
२२	श्लोक १५	परमांम्संस्था	परमामत्संस्था
२५	श्लोक १७	युक्ताहर	युक्ताहार
२६	श्लोक १०	भ्रुवोमध्ये	भ्रुवोंमध्ये
३७	श्लोक ३०	यामां	योमां
३८	पंक्ति ६	कर्म योग है	कर्म जो है
४१	लाइन ८	भूमध्य तथा भ्रमध्य ये	भ्रूमध्य में
४२	पंक्ति १०	फिर नदी नहीं आती	फिर नहीं आती
४६	पंक्ति ७	सं०	काट दीजिये

नोट—अध्याय के विषय में प्रथम अध्याय दो बार लिखा गया है। वह और चौथा अध्याय भी दो बार है। इसका अर्थ यह है नासिकाग्र दर्शनोनाम प्रथमोध्यायः जीव ब्रह्म लीनो नाम चतुर्थोध्यायः ।

भूमिका लेखक—श्री लल्लेराम मिश्रा
मंत्री श्री विन्ध्येश्वरी पुस्तकालय, विन्ध्याचल

पुस्तक मिलने का दूसरा पता—
श्री पं० गिरिजाशंकर पाण्डेय
मु० डंगहर, चौबान
पो० पालीगोदाम, जिला बनारस ।

लेखक की जीवनी

यह कहना अनुचित न होगा कि श्री श्री १०८ श्री स्वामी रामनसीब ब्रह्मचारी जी बाल्यावस्था से ब्रह्मविद और ब्रह्मचर्यावस्था से योग साधनों को करते चले आये हैं। आपने पवित्र कुल में जन्म लेकर अपने पूर्वजों के नाम का उत्थान किया। आप उच्च कोटि के विद्वानों में से एक हैं, आपका जन्म ग्राम डंगहरि चौबान जिला बनारस के अन्तर्गत पितृ नाम श्री माता बदल जी चतुर्वेदी, के घर में हुआ था स्वामी जी सरजू पारीण ब्राह्मण है। आपका शरीर लगभग ६० वर्ष का हो चुका है, फिर भी आप में एक प्रशंशनीय श्रेष्ठ विशिष्ठ एवं योग्य योगी की पवित्रता प्रतिभा और निरंकुशता स्वामी जी की ब्रह्मचर्या की पूर्ण द्योतक है, वेदान्त एवं शान्ति प्रिय पिता की आध्यात्मिकता से आप कदापि वञ्चित न रह सके और स्वाभाविक मन की चञ्चलता को परित्याग कर उसे विशेषानन्द की तरफ एकत्रित करना पड़ा।

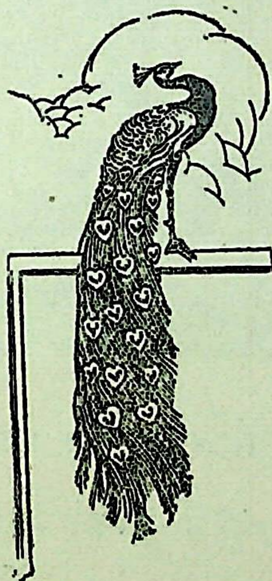
अतः आपका इस विषय में अध्ययन और अनुभव गहन है। लगभग २० वर्ष से श्री श्री जगत्-जननी भव भूत भावन भव्य श्री विन्ध्येश्वरी जी की असीम अनुकम्पा एवं कृपा से तथा श्री स्वामी जी के निवास से श्री विन्ध्य भूमि परम पवित्र होकर अपने को धन्य समझ रही है।

बुध-जन-कृपा कांक्षी
शिवनाथ द्विवेदी
शिवपुर-विन्ध्याचल मिरजापुर।

अथ जीवन्मुक्त गीता

सहायक चित्र

श्रीमान ठा० अर्जुन सिंह मो० देउरी पो० थाना विन्ध्याचल मिरजापुर के रईसों में रईस एक हैं और कुल पवित्र परम्परा से चला आता है। आप दानवीरों में और सत्कर्मों में एक हैं। मैं परम पिता परमात्मा से सदैव प्रार्थी हूं कि इस कुल में पवित्रता और दान वीरता सर्वदा अचल रहै। शास्त्रकारों ने नाम ही अचल माना है।



अथ जीवन्मुक्त गीता

चित्र सहायक और ब्रह्मचारी जी का है

जिनके महत्व का वर्णन पूर्व में किया गया है।

❀ श्री गणेशायनमः ❀

अथ जीवन्मुक्त गीता

किंचित्प्रस्ताविकम् ॥ गीता विश्व साहित्य का सबसे अमर रत्न है जिसका प्रकाश वह प्रकाश पुञ्ज है जिससे विश्व साहित्य के वहुमूल्य रत्न प्रकाश करते हैं। परम कारूणिक भगवान भी स्वयं कभी अपनी विभूति का ऐसे प्रकाश का प्रदीप्त करते हैं जिससे संसार तिमिराच्छन्न प्राणी प्रकाश प्राप्त कर विविध तथा त्रिविध बाधा बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं। उन्हीं भगवद् विभूतियों में पूज्य पाद ब्रह्म विद ब्रह्मचारी जी भी हैं आजीवन ब्रह्म और ब्रह्म विचारी श्री ब्रह्मचारी जी महाराज संस्कृत वाङ्मय के प्रकाण्ड ज्ञाता एवं मर्मज्ञ आलोचक भी हैं इन्होंने हम लोगों के सानुनय के पराभूत हो अपने पञ्चासीति वर्ष अनुभूतियों को अपनी भाषा में लिपिवद्ध करने का परम अनुग्रह किया है। बीज की क्रिया जल और मृत्तिका के संसर्ग से अंकुर पत्र साखा तरू पुष्प आम और फल परिपक्व बीज के रूप हो जाने पर ही परि समाप्त हो जाता है। उसी तरह बीज

मायावश परिच्छिन्न जड़ जीव विविध योनियों में भ्रमण शील स्वरूप की उपलब्धि होने पर ही क्लेश मुक्त हो ईश्वरत्व प्राप्त करता है। यही विषय अष्टाङ्गयौगिक क्रियायें गीता जी के कतिपय मंत्रों के मध्य में से श्री ब्रह्मचारी जी ने सरल एवं सीधी भाषा में समझाने की करुण कृपा की है। इस प्रयास में ब्रह्मचारी जी कहां तक सफल हुये हैं इसे विज्ञ जिज्ञासु अनुभवी पाठक ही समझेंगे। इतने दुर्बोध विषय को इतने सरल रूप में परिणत कर देने का प्रथम प्रथम श्रेय श्री ब्रह्मचारी जी को ही है। इस अप्रकाशित प्रति को देखकर पुज्यपाद श्री १०८ महाराज अखिल निरंजन जी ने इसका नाम करण जीवन मुक्त गीता नाम से कर दिया और बताया कि देहाध्यास से मुक्त रह कर कर्म करना सिखाने के लिये अनाशक्ति योग का मूर्तिमान स्वरूप है। स्वरूप दर्शन के लिये दर्पण है। अनेक जन्म के संस्कार के बिना भी इस जीवन में मुक्त हो जाने की कभी न विगड़ने वाली कुञ्जी है। यह सर्व साधारण के लिये अवश्य प्रकाशित की जाय।

उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर यह अनुभूति योग आपके समक्ष उपस्थित है। अब इसकी उपादेयता को सुज्ञ पाठक स्वयं समझें।

निवेदक—पं० मदनानन्द शास्त्री प्र० अध्यापक

श्री गुरु बन्दना

अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन सलाकया।
चक्षुरून्मीलित येन तस्मै श्री गुरुवेनमः ॥१॥

नत्वा गुरु गणेशंच शारदां बटुकं तथा।
जीवन्मुक्त सुगीतेथ नसीवेन प्रकाशिता ॥

पहिला अध्याय

प्रधान नियम १ से ११ तक दोनों सेनाओं के प्रधान प्रधान शूरवीरों की गणना और सामर्थ्य का कथन (१२-१६) दोनों सेनाओं की शंख ध्वनि का कथन (२०-२७) अर्जुन द्वारा सेना निरीक्षण का प्रसंग (२८—४७) मोह से व्याप्त हुये अर्जुन के कायरता, स्नेह और शोक युक्त वचन।

धृतराष्ट्र उवाच

धर्म क्षेत्रे कुरु क्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किम कुर्वत संजयः ॥

धृतराष्ट्रबोले—

हे संजय धर्म भूमि कुरु क्षेत्र में इकट्ठे हुये युद्ध की इच्छा वाले मेरे और पाण्डु के पुत्रों ने क्या किया ॥१॥ गी० अ०१ श्लो०१

शं०—संसार में कुरु क्षेत्र एकी स्थान में है। स०—क्षेत्र नाम है शरीर का। कुरु नाम है करने का अर्थात्—यहां शरीर ही कुरु क्षेत्र है संसार भी पंच तत्व से बना है और शरीर भी पंच तत्व से बना है।

संजय उवाच

एवमुक्तार्जुनः संख्येरथोपस्थ उपाविशत।
विसृज्य सशरं चापं शोक सं विघ्न मानसः ॥

संजय बोले—

रण भूमि में शोक से उद्विग्न मनवाला अर्जुन इस प्रकार कहकर वाण सहित धनुष को त्यागकर रथ के पिछले भाग में बैठ गया। गी० अ० १ श्लो० ४७

शं० गीता के पहले अध्याय का पहला और अन्त के ४७ वां दोई श्लोक क्यों लिखा है। स० गीता समुद्र के जल का तरंग है जैसे उसमें तरंग उठता है और उसीमें लय हो जाता है उसी तरह गीता के भाव अनन्त हैं।

सेवक को चार शब्द लेना है। पहले कुरु क्षेत्र और शरीर क्षेत्र की एकता। दूसरा—अभ्यास किस तरह किया जाता है। तीसरा—ईश्वर प्राप्ति, चौथा—ईश्वर प्राप्ति से जीव और ईश्वर की एकता कैसे होती है। स०—कुरु क्षेत्र में कौरव और पाण्डव दो दल था। स०—जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इन पांच तत्वों से शरीर बनी है। जैसे वचन इससे शब्दों का कथन होता है हाथ इससे बस्तुओं का लेना देना दानादिक होता है गोड़ इससे तीर्थादिक आना जाना सिकोड़ना और फैलाना होता है लिंग इससे मूत्र त्याग और वीर्य पात होता है। मल स्थान इससे मल त्याग और अपान वायु का त्याग होता है। यही कर्मेन्द्रिय है, नेत्र इससे दृष्टि मात्र के जैसे हरा, पीला, काला इत्यादि का बोध होता है। कान इससे शब्दों का ज्ञान होता है। नासिका इससे गंधादि का ज्ञान होता है; जिह्वा इससे खट्टा, मीठा, तीतादि का ज्ञान

होता है, त्वचा इससे स्पर्श ज्ञान होता है जैसे शरीर में अदेख किसी स्थान में किसी जीव ने काट लिया है। अथवा सहराया इत्यादि का ज्ञान होता है इससे यह ज्ञानेन्द्रिय है शरीर में कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय यही दो दल हैं शरीर में सत्य धर्म दया क्षमा ज्ञान पुत्र यही बांधव हैं इन दोनों दलों में परस्पर सर्वदा युद्ध होता रहता है।

शं०—कुरु क्षेत्र में अर्जुन को भ्रम हुआ था की कुटुम्ब और सखा धर्म भूमि में इकट्ठे हुये हैं मैं किससे युद्ध करूँ उस समय में श्री कृष्ण जी ने ज्ञानोपदेश दे करके उनके भ्रमों को दूर किया है जैसे संसार अनित्य है इसमें कुटुम्ब सखा साला सम्बन्धी इत्यादि कोई किसी का नहीं है भ्रम मात्र है हम इनको नित्य मानते हैं जैसे स्वप्न में हमको लक्ष्मी की प्राप्ति हुई है जागने पर सब मिथ्या है इसी प्रकार संसार में जो पदार्थ दृष्टि मात्र में आती है सो केवल भ्रम मात्र है। स० शरीर ही धर्म भूमि क्षेत्र है इसमें भी स्त्री, पुत्र, धन, सम्पदादि हमारा है केवल मिथ्या ही है मन इन्द्रियों के द्वारा सर्वदा युद्ध करता रहता है जैसे कान ईश्वर का नाम सुनता है उसी समय कहीं जाने की इच्छा हो गई और नेत्र ईश्वर का प्रतिमा देख रहा है लिंग विषय की इच्छा किया इत्यादि इसमें प्रधान सबका कर्ता मन है इसको बश करने से सब इन्द्रियाँ बश में हो जाती हैं जैसे महात्मा गांधी और गवर्नमेंएट से युद्ध हुआ था गवर्नमेंएट के पास सशस्त्र सेना थी गाँधी जी के पास केवल त्याग था इसी से गाँधी जी की विजय हो गई है अर्थात

त्याग से सब इन्द्रियां वशमें हो जाती हैं। इन्द्रिय सम्बन्धी जितने कर्म हैं। जैसे सुनना बोलना इत्यादि होता है। परंच हम नहीं किया यही त्याग है। अन्तः करण के चार साधन है। जैसे, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। प्रधान सबका मन है। श्री कृष्ण जी ने ज्ञानेन्द्रिय से दैवी सम्पदा की प्राप्ती कही है, जैसे—

अभयं सत्वस शुद्धि ज्ञान योग व्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्याय स्तप आर्जवम्॥

अ० १६ श्लोक १२

टी० सर्वथा भय का अभाव अन्तः करण की अच्छी प्रकार से स्वच्छता तत्व ज्ञान के लिये ध्यान योग (केवल प्रणव का चिन्तन करना) में निरंतर दृढ़ स्थिति और सात्विक दान (तथा) सब इन्द्रियों का दमन भगवत् पूजा और अग्नि होत्रादि उत्तम कर्मों का आचरण (एवं) वेद शास्त्रों के पठन पाठन पूर्वक भगवत् के नाम और गुणों का कीर्तन तथा स्वधर्म पालन के लिये कष्ट सहन करना (एवं) शरीर और इन्द्रिय के सहित अन्तः करण की सरलता।

अहिंसा सत्यम क्रोध स्त्यागः शान्ति रपैशुनम्।
दया भूतेष्व लोलुप्त्वं मार्दव ह्रीर चापलम्॥

गी० अ० १६ श्लोक २

तथा मन वाणी और शरीर से किसी प्रकार भी किसी को कष्ट न देना (तथा) यथार्थ और प्रिय भाषण करना अपना अपकार करने वाले पर भी क्रोध का न होना कर्मों में कर्तापन के

अभिमान का त्याग (एवं) अन्तः करण की उपरामता अर्थात चितकी चञ्चलता का अभाव (और) किसी की भी निन्दादि न करना (तथा) सर्व भूत प्राणियों में हेतु रहित दया इन्द्रियों का विषयों के साथ संयोग होने पर भी आशक्ति का न होना (और) कोमलता (तथा) लोक और शास्त्र से विरुद्ध आचरणों में लज्जा (और) व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव।

तेजःक्षमाधृतिः शौच मद्रो हो नातिमानिता।
भ ति संपद दैवी मभि जातस्य भारत ॥

गी० अ० १६ श्लो० ३

टी०—तेज, क्षमा, धैर्य (और) बाहर भीतर की शुद्धि (एवं) किसी में भी शत्रु भाव का न होना (और) अपने पूज्यता के अभिमान का अभाव यह सब तो हे अर्जुन दैवी संपदा को प्राप्त हुये पुरुषों के लक्षण है। दैवी संपदा के अभयादि ९ गुण हैं। अहिंसादि ११ गुण है ! तेजादि ६ गुण हैं। यह सब ज्ञानेन्द्रिय की शक्ति है अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय से प्राप्त होते हैं। कर्मेन्द्रिय से आसुरी संपदा की प्राप्ति अर्थात् कर्मेन्द्रिय के शक्ती हैं। जैसे—

दम्भो दर्पोऽभि मानश्च क्रोधःपारुष्य मेवच।
अज्ञानं चाभि जातस्य पार्थ संपद मासुरीम् ॥

गी० अ० १६ श्लो० ४

टी०—हे पार्थ पाखण्ड और अभिमान तथा क्रोध और कठोर वाणी एवं अज्ञान भी (यह सब) आसुरी संपदा को प्राप्त हुये पुरुषों के (लक्षण) है।

शं०—दैवीसंपदा और आसुरी संपदा इन दोनों शक्तियों से किसकी प्राप्ति होती है। समाधान—

दैवीसंपद्विमोक्षाय निबंधायासुरीमता।
माशुचः संपद दैवीमभिजातोऽसिभारत॥
गी० अ० १६ श्लो० ५

टी०—दैवी संपदा (तो) मुक्ती के लिये (और) आसुरी (संपदा) बंधन के लिये मानी गई है इसलिये हे अर्जुन (तू) दैवी संपदा को प्राप्त हुआ है जो पुरुष जैसा होता है वैसा ही गुण प्राप्त होता है।

दैवीह्येसा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेवये प्रपद्यते माया मेतां तरंतिते॥
गीता अ० ७ श्लो० १४

टी०—क्योंकी यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुण मयी मेरी योग माया बड़ी दुस्तर है (परन्तु) यो पुरुष मेरे को ही निरन्तर भजते हैं ये माया को उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात संसार से तर जाते हैं। श०—माया से तर जाना क्या है। सं०—सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण अर्थात जन्म, मरण, शोक, मोहादि नहीं प्राप्त होता है जैसे वाल्यावस्था में बालकों को संसार नहीं प्राप्त होता है। जैसे—

अनेक चित्त विभ्रान्ता मोह जाल समावृता।
प्रशक्ता काम भोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥
गी० अ० १७ श्लो० १६

टी०—इसलिये अनेक प्रकार के भ्रमित हुये चित्त वाले अज्ञानी जन मोह रूप जाल में फसे हुये (एवं) विषय भोगों में अत्यन्त आसक्त हुये महान् अपवित्र नरक में गिरने हैं । शं०—अपवित्र नरक क्या है । समा०—नापदान मल पतंगादि यही अपवित्र नरक हैं । इनमें से जीव निकालकर पवित्र स्थान में रखिये तो भी उसीमें जाने की इच्छा करते हैं । उसी तरह जिस मनुष्य का चित्त अनेकानेक साधनों को करके और हम हमारा इसीसे मनुष्य भ्रमित हुआ है । और देखिये-

योग्यं योग स्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एत स्याह नपश्यामि चञ्चलत्वास्थितिंस्थिराम् ॥

गी० अ० ६ श्लो० ३३

टी०- हे मधुसूदन जो यह ध्यान योग आपने समत्वभाव से कहा है इसमें मैं (मन के) चञ्चल होने से बहुत काल तक ठहरने वाली स्थिति को नहीं देखता हूं । पुनः

चञ्चलहि मनः कृष्ण प्रमाथी बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रह मन्येवायो रिव सुदुस्तरम् ॥

गी० अ० ६ श्लो० ३४

टी०—हे कृष्ण (यह) मन बड़ा चञ्चल (और) प्रमथ स्वभाव है । (तथा) बड़ा दृढ (और) बलवान है इसलिये उसका वशमें करना मैं वायु की भांति अति दुस्तर मानता हूं । शं०—अर्जुन बोला हे कृष्ण जिस शरीर में ऐसे महान् सूर-वीर एकत्रित उपस्थित हैं

उस शरीर में जप तप और तीर्थ हवनादिक यह कैसे कर सकता है। हे प्रभो उन महान् सूर-वीरों से विजय और ईश्वर प्राप्ति के लिये क्या उपाय है सो कृपा करके कहिये और दिखाइये। ॐ तत्सदिति श्री जीवन्मुक्त गीतायां श्री कृष्णार्जुन संवादे कुरु क्षेत्रे शरीरक्षेत्र वर्णनोनाम प्रथमोऽध्यायः। सं०

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चल मस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्म मान्यैवशं नयेत्॥

गी० अ० ६ श्लो० २६

टी०—यह स्थिर न रहने वाला (और) चञ्चल मन जिस जिस कारण से सांसारिक पदार्थों में बिचरता है उसे उससे रोककर (बारम्बार) परमात्मा में निरोध करै।

शं०—मन को कैसे परमात्मा में निरोध करै। स०—जैसे हम जप करते हैं। मन तो यों ही भागता है। उसी समय मदारी अनेक प्रकार के खेल दिखाता है तो हमें चाहिये की जब तक हमारा नियम पूरा न हो तब तक उस मदारी के पास न जाय। पुनः—जैसे हम मूर्ति पूजन कर रहे हैं उसी समय एक सुन्दरी स्त्री आई तो हमें यही भान होना चाहिये कि हे ईश्वर आप सर्व शक्तिमान हैं, जो की इस रूप को बनाया और आप किस रूप के होंगे। हमें उस रूप को दिखाइये कि जिस रूप से आप इस मांस अस्थि में ऐसा रूप बनाया है। यद्यपि मन उस स्त्री में रमा है तो भी साथ इस विचार को करते रहना इत्यादि सर्वदा सब कामों में विचार करते रहना तो आपको विषयवासना कदापि नहीं सतायेगो। जैसे

क्षुधा पीड़ित जीव अन्नादिक के सेवन से क्षुधा शाँत हो जाता है उसी प्रकार त्याग से सब विषयादि शान्त हो जाते है।

असशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेनतु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥

गी० अ० ६ श्लो० ३५

टी०—हे महाबाहो निःसन्देह मन चञ्चल (और) कठिनता से वश में होने वाला है। परन्तु हे कुन्ती पुत्र अर्जुन अभ्यास अर्थात् स्थिति के लिये बारम्बार यत्न करने से और वैराग्य से वश में होता है। शं०—अभ्यास और वैराग्य क्या है। समा— किसी कामको समय पर करते रहना वही अभ्यास है उस काम को त्याग देना यही वैराग्य है। जैसे पूर्वमें कहा है फिर भी कहते हैं। जैसे हम गायत्री का जप १०८ करते हैं और किसी एक भाण्ड में एक विन्दु जल रोजाना डालते हैं जब वह भर गया तो त्याग दिया इस अभ्यास और वैराग्य से मन वश में हो जाता है। सो आगे देखिये मन को क्या करना चाहिये।

देवद्विजगुरुप्राज्ञ पूजन शौच मार्जवम्।
ब्रह्मचर्य महिंसा च शारीर तप उच्यते ॥

गी० अ० १७ श्लो० १४

टी०—देवता, ब्राह्मण, गुरु (माता-पिता श्रेष्ठ जन) (और) ज्ञानी जनों का पूजन सेवा (एवं) पवित्रता सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा (यह) शरीर सम्बन्धी तप कहा है।

अनुद्वेगकरं वाक्य सत्यं प्रिय हितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥

गी० अ० १७ श्लो० १५

टी०—तथा जो उद्वेग को न करने वाला प्रिय और हित कारक (एवं) यथार्थ भाषण है (देखी और विचार में जो वस्तु आवै वही सत्य है) और (जो) वेद शास्त्रों के पढ़ने का एवं परमेश्वर के नाम जपने का अभ्यास हैं वह निःसन्देह वाणी सम्बन्धी तप कहा जाता है ।

मनः प्रशाद सौम्यत्वं मौन मात्म विनिग्रहः ।
भावसंशुद्धि रित्येतत्तया मानस उच्यते ॥

गी० अ० १७ श्लो० १६

टी०—तथा मन की प्रशन्नता (और) शान्त भाव (एवं) भगवत् चिन्तन करने वाला स्वभाव मन का निग्रह (और) अन्तःकरण की पवित्रता ऐसे यह मन संबन्धी तप कहा जाता है । शं०- मन क्या है ? माया संबन्धी नियमों का स्वयं कर्ता ही मन है । निग्रह क्या है ? माया सम्बन्धी नियमों का कर्तापन त्याग देना ही निग्रह है । और इन तीनों तापों से किस की शुद्धि होती है । शरीर के तप से शरीर की शुद्धि होती है । शारीरिक ताप नहीं लगता है । वाक् (वचन) के तप से वचन की शुद्धि होती है । दैविक ताप नहीं व्यापता है । मन के तप से मन की शुद्धि होजाती है । और भौतिक (आकस्मिक) ताप नहीं व्यापता है जैसे आकाश

में बादल हट जाने से आकाश निर्मल हो जाता है, और मलीन जल में निर्मली डाल देने से जल निर्मल हो जाता है। उसी प्रकार तीनों तपों से वाह्य की शुद्धि हो जाती है। अर्थात् शरीर निर्मल हो जाता है।

अथ आभ्यन्तर साधन विधि—

संकल्प प्रभवान्कामां स्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनः सैवेन्द्रिय ग्रामं विनियम्य समंततः॥

गी० अ० ६ श्लो० २४

टी०—संकल्प से उत्पन्न होने वाली सम्पूर्ण कामनाओं को निःसेषता अर्थात् वासना और आशक्ति सहित त्याग कर (और) मन के द्वारा इन्द्रियों के समुदाय को सब ओर से ही अच्छी प्रकार वश में करके। शं०—संकल्प से सब कामना और इन्द्रियों के समुदायों के अच्छी तरह कैसे वश में होती है। समा०—

शनैः शनै रूपरमेब्दुध्याधृति गृहीतया।
आत्मसंस्थंमनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्॥

गी० अ० ६ श्ला० २५

टी०—क्रम क्रम से अभ्यास करता हुआ उपराम को प्राप्त होवे तथा धैर्ययुक्त बुद्धि द्वार मन को परमात्मा में स्थित करके (परमात्माके शिवाय और) कुछ भी चिन्तन न करै।
शं०—किस क्रम से और धैर्ययुक्त बुद्धि द्वारा मन को परमात्मा में कैसे स्थित करै। सं०—जैसे हमने एकान्त स्थानमें बैठ करके किसी

दिन से आरम्भ किया कि एक स्वास में १५ बार ॐ कार का जप अथवा १५ अंक जप ने के बाद हम और सांसारिक काम करेंगे। पांच रोज करने के बाद पुनः बीस प्रणव अथवा बीस अंक गन के वो दूसरा काम करेंगे इस प्रकार बढ़ाने को अभ्यास कहते हैं। अभ्यास और समय इन्द्रियां जैसे कान कोई बात सुना, आँख देखा, इत्यादि जब तक हमारा नियम पूरा नहीं हुआ है तब तक उन इन्द्रियों का काम न करना इसका नाम इन्द्रियों का रोकना हुआ। इस प्रकार अभ्यास करते करते इसकी सिद्धि हो जाती है। अर्थात अभ्यास की सिद्धि हो जाती है। पुनः दहिने हाथ के अंगुष्ठा से दहिना नासिका दबा करके बांये नासिका से वायु खींचना और अंक अथवा प्रणव को गनना एक स्वास मे अंक पूरा होते ही दहिने हांथ की तीसरी और चौथी अंगुरी से बायां नासिका को भी दबा लेना तब अंगुष्ठा को छोड़ कर धीरे धीरे स्वांस छोड़ देना, फिर बायें नासिका को तीसरी चौथी अंगुली से दबा कर अंक गिनना और वायु खींचना। दहिने नासिका से फिर अंगुष्ठा से दहिना नासिका दबा कर बांये नासिका से वायु छोड़ना इस प्रकार से तीन आवृत्ति करना। जैसे दहिने नासिका को दाहिने हांथ के अंगुष्ठा से दबाया और पांच अंक गिना। तीसरी चौथी अंगुरी से बांयां नासिका को भी बन्द किया तो चौगुना २० अंक गिना। अंगुष्ठा छोड़ने के साथ दश अंक पर वायु निकाला इसी रीती से बांये नासिका को तीसरी चौथी अंगुरी से दबा करके दहिने नासिका से दश अंक गिनना

अंगुष्ठा से दाहिना नासिका दवा करके तीस अंक गिनना बांये नासिका से पन्द्रह अंक पर छोड़ना यह एक आवृत्ति प्राणायाम हुआ इसी तरह से जितना हो सके उतना बढ़ाना इस विधान को किसी कर्ता गुरू से जानना यह दूसरा अभ्यास है। इस प्रकार अभ्यास करने से चित्त निस्पृह हो जाता है मन भी शान्त हो जाता है। तीसरा अभ्यास केवल आप बिना अंगुली दबाये हुये स्वांस बन्द करके बीस अंक अथवा बीस ॐ कार का जप करने का अभ्यास करो तीस चालिस इस प्रकार करने से सुषुम्ना खुल जाती है इसमें कोई शंका नहीं है न तो आपको शारीरिक कष्ट होगा इन अभ्यासों में से जो सरल समझें सो करना मैं करके लिखा है।

यदा विनियतं चित्तमात्मन्ये वावतिष्ठति।
निस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्तइत्युच्यते तदा ॥

गी० अ० ६ श्लो० १८

टी०—अत्यन्त वश में किया हुआ जिस काल में परमात्मा में ही भली प्रकार स्थिर हो जाता है उस काल मे सम्पूर्ण कामनाओं से स्पृहा रहित हुआ पुरुष योग युक्त ऐसा कहा जाता है। शं०—सब कामों में चित्त कैसे स्पृह हो जाता है? सं०–जैसे सर्प अपनी केंचुर को त्याग कर फिर नहीं चाहता है और वन्ध्यास्त्री गर्भ धारण से निस्पृहा हो जाती है उसी प्रकार चित्त अभ्यास के द्वारा निस्पृह हो जाता है फिर विषय वासना को नहीं धारण करता है

यथा दीपो निवासस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
योगिनों यत चित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥

गी० अ० ६ श्लो० १९

टी०—और जिस प्रकार वायु रहित स्थान में स्थित दीपक नहीं चलायमान होता है। वैसे ही उपमा परमात्मा के ध्यान में लगे हुये चित्त की कही गई है। शं०—एकचित्त कैसे होना चाहिये स०—जैसे वर्षा काल में मेघ को देख कर मोर एक चित्त हो जाता है। उसी प्रकार अभ्यासी योगी अभ्यास में एक चित्त हो जाता है। सब कामों में जब तक एक चित्त नहीं होता है तब तक वह कार्य नहीं होता है यह अभ्यास योग कहा गया है। इसके बाद यही साधन ध्यान योग में है।

अर्थाचत्तं समाधातुं नशक्नोमयिस्थिरम् ।
अभ्यास योगेन तता मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥

गी० अ० १२ श्लो० ९

टी०—और यदि तू मन को मेरे में अचल स्थापन के लिये समर्थ नहीं है तो हे अर्जुन अभ्यास रूप (नाम और गुणों का श्रवण कीर्तन इत्यादि भगवत् प्राप्ती के लिये बारम्बार चेष्टा करने का नाम अभ्यास है) योग के द्वारा मेरे को प्राप्त होने के लिये इच्छा कर।

अभ्यासेऽप्य समर्थोऽपि मत्कर्म परमो भव ।
मदर्थं मपि कर्माणि कुर्वंसिद्धिमवाप्स्यसि॥

गी० अ० १२ श्लो० १०

टी०—और यदि तूं उपर कहे हुये अभ्यास में भी असमथ है तो केवल मेरे लिये कर्म करने में ही परायण हो (इस प्रकार) मेरे अर्थ कर्मों को करता हुआ भी मेरी प्राप्ती रूप सिद्धि को (ही) प्राप्त होगा।

अथै तदप्य शक्तोऽपि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्म फलत्यागे ततः कुरु पतामत्मनः॥

गी० अ० १२ श्लो० ११

टी० और यदि तू इसको भी करने के लिये असमर्थ है तो जितेन्द्रिय हुये मन वाला (और) मेरी प्राप्त रूप योग के शरण हुआ सब कर्मों के फल का मेरे लिये त्याग (जो कुछ कर्म करना सो सब ईश्वर में) अर्पण करें।

श्रेयोहि ज्ञान मभ्यासाज्ज्ञानात्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्म फलत्यागी स्त्यागच्छान्तिनिरन्तरम्॥

गी० अ० १२ श्लो० १२

टी०—क्योंकि (कर्म को न जान कर किये हुये) अभ्यास से परोक्ष ज्ञान श्रेष्ट है (और) परोक्ष ज्ञान से मुफ परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ट है (तथा) ध्यान से भी सब कर्मों के फल का मेरे लिये त्याग करना श्रेष्ठ है (और) त्याग से तत्काल ही परम शान्ति होती है। शं०—पहिले आपने अभ्यास कहा, दूसरे प्राणायाम से, तीसरे नाम कीर्तन से, चौथे कर्मों के फलका त्यागसे श्रेष्ट कहा है। समा०—क्रम से चारों अभ्यास करना कारण कि अनेक प्रकार के भोजन आपके लिये बने हैं क्रम से सब पदार्थों

को खायेंगे तो आपकी तृप्ति होगी एकीएका न तो आप खा ही सकेंगे न तो तृप्ति ही होगी क्रम के अभ्यास से शीघ्र सम्पूर्ण प्रकार से चित्त निस्पृह हो जाता है। अभ्यास का नियम कह गये हैं। फिर भी इसका साधन कहेंगे।

अभ्यासयोग युक्तेन चेतसा नान्य गामिना।
परमम् पुरुष दिव्यम् यातिपार्थानुचिन्तयन् ॥

गी० अ० ८ श्लो० ८

टी०—और हे पार्थ (यह नियम है की) परमेश्वर के ध्यान अभ्यास रूप योग से युक्त अन्य तरफ न जाने वाले चित्त निरन्तर चिन्तन करता हुआ पुरुष परम (प्रकाश रूप) दिव्य पुरुष को अर्थात् परमेश्वर को ही प्राप्त होता है। उसके उपरान्त श्रीकृष्ण महाराज बोले—

प्रजहाति यदा कामान्सर्बान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मनोतुष्टः स्थित प्रज्ञस्तदोच्यते ॥

गी० अ० २ श्लो० ५५

टी०—हे अर्जुन जिस काल में (अभ्यास काल में) यह पुरुष मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग देता है (त्याग का अर्थ कह चुके हैं सर्प केचुर समान) उस काल में आत्मा से ही आत्मा में सन्तुष्ट हुआ स्थिर बुद्धि वाला कहा जाता है।

शंका—आत्मा में आत्मा कैसे सन्तुष्ट हो जाता है ?

स०—जैसे समुद्र जल से सर्वदा सन्तुष्ट रहता है और पृथ्वी वीज से सर्वदा सन्तुष्ट रहती है उसी प्रकार अभ्यास से जब भ्रम दूर हो जाता है तो केवल आत्मा ही आत्मा दीखता है। जैसे सूर्य के उदय से प्रकाश ही प्रकाश रह जाता है।

दुःखेष्वनुद्विग्न मनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
बीतराग भय क्रोधःस्थित धोःमुनिरुच्यते ।

गी० अ० २ श्लो० ५६

टी०—तथा दुखों की प्राप्ति में उद्वेगरहित है जिसका (और) सुखों की प्राप्ति में दूर हो गई है स्पृहा जिसकी (तथा) नष्ट हो गये हैं, राग और क्रोध जिसके (ऐसा) मुनिस्थिर बुद्धि कहा जाता है।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्ततत्प्राप्य शुभांशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

गी० अ० २ श्लो० ५७

टी०—और जो पुरुष सर्वत्र स्नेह रहित हुआ उस शुभ तथा अशुभ (वस्तुओं) को प्राप्त होकर न प्रशन्न होता है (और) न द्वेष करता है ?

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानिव सर्वशः ।
इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

गी० अ० २ श्लो० ५८

टी०—और कछुआ (अपने) अङ्गों को जैसे (समेट लेता है वैसे ही) यह पुरुष जब सब ओर से (अपनी) इद्रिन्यों को इन्द्रियों के विषयों से समेट लेता है (तब) उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।

शं०—स्थिर बुद्धि कैसे हुई और फिर बुद्धि पलटती है या नहीं ?

स०—अभ्यास के द्वारा बुद्धि स्थिर होती है और जैसे आकाश सर्वदा स्थिर रहता है और समुद्र का जल सर्वदा समान रहता है। वैसे ही स्थिर बुद्धि वाले पुरुष की बुद्धि कभी भी दुष्कर्मों में चलायमान नहीं होती है सर्वदा स्थिर रहती है। वह पुरुष सर्वदा एकान्त वास करता है। जैसे—

योगी युञ्जीत सततं मांत्मान रहसिस्थितः।
एकाकीयत चित्तात्मा निरासी परिग्रहः॥

गी० अ० ६ श्लो० १०

टी०—इसलिये उचित है की जिसका मन और इन्द्रियों सहित शरीर जीता हुआ है ऐसा वासना रहित (और) संग्रह रहित योगी अकेला ही एकान्त स्थान में स्थिर हुआ निरन्तर आत्मा को परमेश्वर के ध्यान में लगावै। कैसे लगावै सो देखिये।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिर मासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नाति नीचं चैला जिन कुशोत्तरन्॥

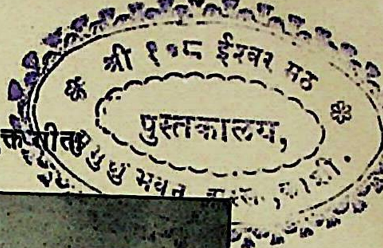
गी० अ० ६ श्लो० ११

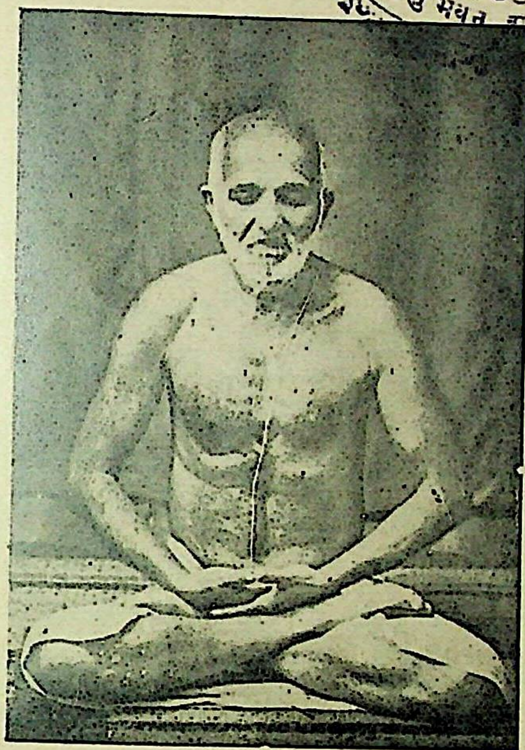
टी०—शुद्ध भूमि में कुशा, मृग छाला, कम्बल और वस्त्र है उपरोपरि जिसके ऐसे अपने आसन को न अति ऊँचा (और) न अति नीचा स्थिर स्थापन करके।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यत चित्तेन्द्रिय क्रियः।
उपविश्यासने युञ्जा योगमात्म विशुद्धये॥

गी० अ० ६ श्लो० १२

अथ जीवन्मुक्त गीता

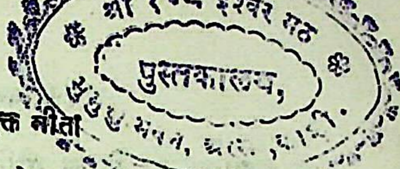




चित्र प्रकाशक रामनसीब जी का है

आप पद्माशन से बैठे हैं अपने नासिका के अग्र भाग को देखते हैं जिसके अवलोकन से दिव्य चक्षु हो जाती है अर्थात नेत्र की चञ्चलता दूर होकर स्थिर हो जाती है किसी प्रकार के पदार्थों के दुर्व्योहारों को नहीं ग्रहण करता है।

विशेष विवरण प्रथम अध्याय से जानना।



टी०—और उस आसन पर बैठकर (तथा) मनको एकाग्र करके चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में किया हुआ अन्तःकरण की शुद्धि के लिये योग धारण का अभ्यास करं।

समंकाय शिरो ग्रीवं धारयन्न चलंस्थिरः।
सप्रेक्ष्यनासिकाग्रस्वं दिशश्चा नवलोकयन्॥

गी० अ० ६ श्लो० १३

टी०—उसकी विधि इस प्रकार है कि-काया (शरीर) शिर और ग्रीवा (गरदन) को समान और अचल धारण किये हुये दृढ़ (होकर) अपने नासिका के अग्र भाग को देखकर अन्य दिशाओं को न देखता हुआ। शं०— अपने नासिका के अग्र भाग को कैसे देखै और देखने से क्या होता है। स०—इसको चित्र से देखो और जैसे बहेलिया अपने सब इन्द्रियों के गुणों को त्यागकर केवल पक्षी को देखकर अन्य दिशाओं को न देखता हुआ और जैसे चकोर अपने सब इन्द्रियों के विषयों को त्यागकर केवल नेत्र के द्वारा शरद ऋतु के पूर्ण चन्द्रमा को देखकर अन्य दिशाओं को नहीं देखता है इसी प्रकार से साधक अपने अन्तःकरण के शुद्धि के लिये अपने नासिका के अग्र भाग को देखकर योग का अभ्यास करे।

नासिकाग्र दर्शनो नाम ॐ तत्सदिति श्री जीवन्मुक्त गीतायां श्री कृष्णार्जुन संवादे प्रथमोध्यायः।

प्रशान्तात्मा विगत भीति ब्रह्मचारी व्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥
गी० अ० ६ श्लो० १४

टी०—और ब्रह्मचर्य के व्रत में स्थित रहता हुआ भय रहित (तथा) अच्छी प्रकार शान्त अन्तः करण वाला (और) सावधान (होकर) मन को वश में करके मेरे में लगे हुये चित्त वाला (और) मेरे में परायण हुआ स्थित होवे। शं०—कैसे आत्मा शान्त होगा और मन वश में होगा। सं०—जिस समय आप ब्रह्मचर्य में सोकर नास्तिकाग्र दर्शनोंयम् अपने नासिका के अग्र भाग को देखने का अभ्यास हो जायगा उसी समय आपके मन वश में हो जायगा और शरीर सम्बन्धी जितने विकार है सो सब शान्त हो जाते हैं। यहां मेरे में परायण हुआ नासिका अग्र भाग ही है।

युञ्जन्येवं सदात्मान योगीनियत मानसः।
शान्ति निर्वाण परमांम्संस्था मधिगच्छति॥
गी० अ० ६ श्लो० १५

टी०—इस प्रकार आत्मा को निरन्तर (परमेश्वर के स्वरूप में) लगाता हुआ स्वाधीन मन वाला योगी मेरे में स्थित रूप परमानन्द पराकाष्ठा वाली शान्ति को प्राप्ति होता है। मनको शान्त करना अर्थात् अपने आधीन करना सिवाय नासिका अग्र भाग देखने के और कोई उपाय नहीं है। अन्तः करण के चार

महान् वीर है जैसे अहंकार चित्त बुद्धि मन यह सब अपने आधीन हो जाते हैं उस काल में परमात्मा के मिलने में अर्थात् साक्षात् होने में किसी प्रकार का अड़चन नहीं होती है प्रसंगतः मन क्या है मन की गति से क्या क्या होता है। सो देखिये मन का विवरण हम कह गये हैं। कैसा है जीव रूप हंस के साथ रहता है तब तक वह मैं कर्ता हूं जब हंस में मिल जाता है तब मैं नहीं रहता है वह जीव रूप हंस कोटि सूर्य के समान तेज वाला है तथा नख से लेकर शिखा पर्यन्त इस सर्व शरीर में व्याप करके रहता है यह जीव रूप हंस यद्यपि सर्व शरीर में रहता है तथापि हृदय कमल में भी अष्ट दलों के भेद से जिस जीव रूप हंस की अष्ट प्रकार की स्थिति होती है। तिस अष्ट प्रकार की स्थिति के प्रभाव से ही जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति में पुण्य बुद्धि आदिक कर्मों की उत्पत्ति होती है। अब इसी अर्थ को स्पष्ट करके निरूपण करते हैं। अष्ट दल हृदय कमल के प्रत्येक दल पर जीव के स्थित होने का फल निरूपण करते हैं यथा जब मन युक्त जीव रूप हंस हृदय कमल के पूर्व दल पर स्थित होता है तो पुण्य कर्म करने की बुद्धि उत्पन्न होती है। जब अग्नि कोण के दल पर स्थित होता है। तब निद्रा आलस्यादि विकार उत्पन्न होता हैं। दक्षिण दल पर स्थित होने पर क्रोधादि विकार उत्पन्न होता है। दक्षिण दल पर स्थित होने पर क्रोधादि विकार उत्पन्न होता है नैऋत्य कोण के दल पर स्थित होने से पाप कर्म करने की बुद्धि उत्पन्न होती है। पश्चिम दल पर स्थित होने से नाना प्रकार के व्यवहार करने की प्रीति

उत्पन्न होती है। वायु कोण के दल पर स्थित होने से किसी देश के गमन करने की प्रीति उत्पन्न होती है। उत्तर दल पर स्थित होने से स्त्री संभोग की इच्छा उत्पन्न होती है। इशान कोण के दल पर स्थित होने से दान करने की प्रीति उत्पन्न होती है। जब अष्ट दलों के मध्य देश में जीव रूप हंस स्थित होता है। तो लोक प्रसिद्ध हंस पक्षी जैसे मिले हुये क्षीर जल को भिन्न भिन्न करता है। तैसे जीव रूप हंस भी सत्य असत्य वस्तु का विचार करके सर्व विषयों से वैराग्य को प्राप्त होता है। जब जीव हृदय कमल के केशर पर स्थित होता है। तब यह जीव जाग्रत अवस्था को प्राप्त होता है। जब हृदय कमल की कर्णिका में मध्य में रक्त वर्ण वाला जो रुधिर के पिण्ड में जब जीव स्थित होता है तब सुषुप्ति अवस्था की प्राप्ति होती है। सो जीव रूप हंस मैं ब्रह्म हूं इस प्रकार की पूर्ण दृष्टि को करके जब जीव परिच्छिन्न हृदय कमल के अभिमान का परित्याग कर देता है तब जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति के परे जो तुरीया अवस्था है उसको प्राप्त होता है। इसका अत्यधिक वर्णन है सेवक अपनी बुद्धि के अनुसार लिखा है। शरीर से जीवि निकलने में हं भीतर जाने में सः कहता है इसका नाम जीव है। यह जीव की गति ठहरती नहीं है वही मन है जीव की गति ठहरने के बाद मन स्थिर हो जाता है। स्वाँस को गति ६० दंड में दिन रात्रि व्यतीत होती है वही ६० दंड में २१०० ६०० स्वासा निकलता है इसके रोकने की विधि अभ्यास द्वारा कह गये हैं अब योगी को आहार और विहार किस प्रकार नियम है सो कहते हैं।

नात्यश्न तस्तु योगोऽस्ति न चैकान्त मनश्नतः ।
न चाति स्वप्न शीलस्य जाग्रतोनै व चार्जुन ॥

गी० अ० ६ श्लो० १६

टी०—परन्तु हे अर्जुन यह योग न तो बहुत खाने वाले का सिद्ध होता है और न बिलकुल न खाने वाले का तथा न अतिशय करने के स्वभाव वाले का और न अत्यन्त जागने वाले का ही (सिद्ध होता है) ।

युक्ताहर विहारस्य युक्त चेष्ट स्वकर्मस्सु ।
युक्त स्वप्ना ववोधस्य योगोभवति दुःखहा ॥

गी० अ० ६ श्लो० १७

टी०—यह दुःखों का नाश करने वाला योग (तो) यथा योग्य आहार और विहार करने वाला तथा योग्य शयन करने तथा जगाने वाले का ही (सिद्ध) होता है । शं० कैसा और क्या भोजन करना । सं० जैसे आप जितना भोजन करते हैं, उसमें दो हिस्सा भोजन करना, एक हिस्सा पानी पीना और एक हिस्सा पेट खाली रखना दूध युक्त भोजन करना और खट्टा तीता मीठा इत्यादि न खाना । खट्टा में नेवुआ और तीता में काली मिर्च मीठा किञ्चित अंश में खाना यह सुखदाई है श्री कृष्ण जी बोले हे अर्जुन परन्तु मेरे को इन प्राकृत नेत्रों द्वारा देखने को आप निःसन्देह समर्थ नहीं हो इससे (मैं) तेरे लिये नित्य अर्थात अलौकिक चक्षु देता हूं उससे (तू) मेरे प्रभाव को (और) योग

शक्ति को देख। शं० नासिका के अग्र भाग को देखने से दिव्य चक्षु हो जाती है जैसे नेत्र में कमल रोग हो गया है उस कमल रोग की औषधि करने से वह दूर हो जाता है। उसी प्रकार अपने नासिका के अग्र भाग को देखने से मन की शान्ति दिव्य चक्षु और नेत्रादि के समस्प विकार नष्ट हो जाते हैं। और जैसे बादल के हट जाने से आकाश निर्मल हो जाता है उसी प्रकार से नेत्र निर्मल हो जाते हैं तब दिव्य चक्षु हो जाती है दिव्य चक्षु से किसकी प्राप्ति होती है।

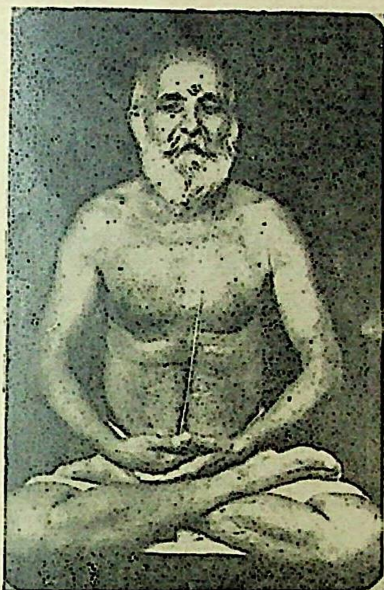
प्रयाण काले मानसाऽचलेन भक्त्या युतो योगबलेन चैव।
भ्रुवोमध्ये प्राणमा वेश्य सम्यक् सतंपरं पुरू षमुपैतिदिव्यम्।

गी० अ० ८ श्लो० १०

टी०—वह भक्ति युक्त पुरुष अन्त काल में (भी) योग बल से भृगुटी के मध्य में प्राण को अच्छी प्रकार स्थापन करके फिर निश्चल मन से स्मरण करता हुआ उस दिव्य रूप परम पुरुष परमात्मा को ही प्राप्त होता है। शं० भृगुटी के मध्य में प्राण को कैसे स्थापन किया जाय और वहां क्या है जैसे प्राण तो हृदय में है स्थित है। सं० मनः प्राण मन रूपी प्राण अर्थात मन से भृगुटी को देखै जैसे। नासिका के अग्र भाग देखने के बाद मन भूमध्य में स्वयं स्थित हो आता है।

सर्वद्वाराणि संयम्य मनोहृदि निरूध्यच।
मूर्ध्न्याध्यायात्मनः प्राण मास्थितो योग धारणाम्॥

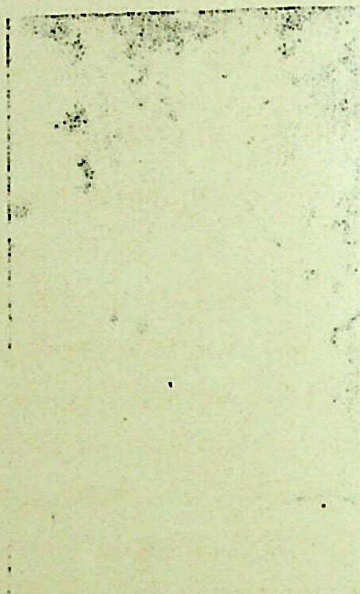
अथ जीवन्मुक्त गीता



यह चित्र श्री ब्रह्मचारी जी का है

इस आसन से भ्रू के मध्य में प्रणव का दर्शन हो जाता है। जिनके दर्शन से मन की चञ्चलता दूर हो जाती है।

विशेष विवरण अध्याय २ से जानना।



गी० अ० ८ श्लोक १२

टी० – हे अर्जुन जो पुरुष सब इन्द्रियों के द्वारों को रोक कर अर्थात इन्द्रियों को विषयों से हटा कर (तथा) मन को हृदय में स्थिर करके और अपने प्राण को मस्तक में स्थापन करके योग धारण में स्थित हुआ।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयातित्यजं देहं सयाति परमां गतिम्॥

गी० अ० ८ श्लोक १३

टी०—जो पुरुष ॐ ऐसे (इस) एक अक्षर रूप ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थ स्वरूप मेरे को चिन्तन करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है वह पुरुष परम गति को प्राप्त होता है। शं० द्वार कौन है उस द्वार को कैसे रोका जाय और मन को कैसे हृदय में रोकै और प्राण वायु मस्तक में स्थित हो की उस अवस्था का नाम योग धारण है। शं० दोनों कान दोनों नासिका और दोनों नेत्र मुख और लिङ्ग गुदा यही नवद्वार है। द्वार से और इन्द्रियों के गणना मे अन्तर है इन्द्रियों का गणना पूर्व कह गये हैं द्वारों को रोकने का बिधि दोनों अगुष्ठा से दोनो कानों को दोनों तर्जनी से दोनों नेत्रों को दोनों मध्यमास से दोनों नासिकावों को दोनों अनामिका से मुख बन्द करना और गुदा मार्ग को बाये पैर के एड़ी से दबाना दहिना पैर की एड़ी को बाँये जाँघ के मूल में रखना इससे अपान वायु गुदा से उठ

कर प्राण वायु हृदय में है ये दोनों वायु मिल जाती है इससे अपान प्राण वायु मन को लेकर मस्तक में स्थित हो जाती है क्यों कि इस षड़ मुखी मुद्रा से सुषुम्णा खुल जाती है। अथवा आप किसी आसन से बैठ जाइये जैसे स्वस्थिकासन (उकूरू मुकुरू) केवल स्वांस को रोक कर गुदा मार्ग से वायु ऊपर को खीचिये तो आपके मन को अपान वायु लेकर प्राण वायु के साथ मस्तक में स्थित हो जाती है। यह दोनों प्रकार से साधन करके तो हमने लिखा है। जैसे एक पत्ती को आप पकड़ के एक पिञ्जरा में बन्द कीजिये तो पत्ती चारों तरफ से घूम करके पिञ्जरा में जो अड्डा बना हुआ है उसी पर स्थित होगा।

उसी प्रकार से स्वास बन्द कर देने से सात द्वारों से पत्ती रूपी वायु बाहर न जायगी। अपान बायु ज्यों उपर को खींचा त्योंही प्राणवायु के साथ मन मस्तक में सहश्रार कमल दल में स्थित हो जाता है। इसी का नाम है द्वार का रोकना, यही साधन श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन से कहा है। जो पुरुष ॐ ऐसे एक अक्षर ब्रह्म को स्मरण करता है शरीर को त्याग कर अर्थात शरीर और इन्द्रियों के भावों को त्याग करना ही देहत्याग कहा जाता है। इन्द्रियों के विषयों का त्याग क्या है ? मैं नहीं देखा न सुना देखते सुनते भी, न देखा न सुना यही त्याग है। जैसे

अपाने जुह्वति प्राण प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥

गी० अ० ४ श्लो० २९

टी०—अपान वायु प्राण में प्राण वायु अपान में मिल जाते हैं वैसे ही अन्य योगी जन प्राण वायु में अपान को हवन करते हैं प्राण अपान की गति को रोक कर प्राणायाम में परायण होते हैं। प्राण अपान को मिलाने की विधि कह चुके हैं जैसे आप केवल स्वांस को रोकिये और गुदा मार्ग में जो अपान बायु है उसको ऊपर को उठाइये तो प्राण अपान दोनों मिल जाती है मिल जाने पर सुषुम्णा खुल जाती है जिससे जीव मुक्त कहा जाता है। अर्थात ब्रह्म दर्शन कहा जाता है इस साधन को अश्वनी मुद्रा भी कहते हैं इस क्रिया को किसी साधक गुरू से जानना।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहम् सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

गी० अ० ८ श्लोक १४

टी०—हे अर्जुन जो पुरुष मेरे में अनन्य चित्त से स्थिर हुआ सदा ही निरन्तर मेरे को स्मरण करता है उस निरन्तर मेरे में युक्त हुये योगि के (लिये) मैं सुलभ हूं।

शं० अनन्य चित कैसे हुआ और निरन्तर स्मरण क्या है।

सं० जिन योगियों का भ्रूमध्य में मन स्थिर हो गया है उसी को अनन्य कहते हैं याने दूसरे का चिन्तन न होना। भ्रूमध्य में ॐ यही ब्रह्म परमात्मा ईश्वर जो कहिये सो उसी भृगुटी के मध्य में स्वयं जोति प्रगट हो जाती है। इसी को शाम्भवी मुद्रा कहते हैं इसका चिन्तन सर्वदा होने से वही योगी विदेह कहाता है उसको शरीर और इन्द्रियों के विषयों अर्थात कर्मों का मान नहीं होता है यही विदेह है। और जब तक सब

द्वारों को रोका नहीं जाता है सुषुम्णा मार्ग नहीं खुलता है जब तक सुषुम्णा नहीं खुली तब तक ब्रह्म जोति अर्थात ब्रह्म का दर्शन नहीं होता है तब तक जीव और ईश्वर से एकता नहीं होती है। जब तक एकता नहीं हुई है तब तक संसार में आवागमन लगा रहता है। आवा गमन अर्थात आना जाना। शं० आना और जाना किसको कहते हैं। स० हं। इसको कह कर जीव आता है। सः कह कर जीव शरी से जाता है। सुषुम्ना खुल जाने से दोनों मिल जाती है। तो सोहं यही केवल रह गया अर्थात आपको यह नहीं प्रतीत होगा कि मेरा दाहिना अथवा बाया चल रहा है। यही अवस्था सर्वदा रहने को विदेह कहते हैं। अब आप उस साधन को बतलाइये कि जिससे पूर्व अभ्यास समग्र न किये जायं और ब्रह्म दर्शन हो जाय। आप प्रथम एकान्त स्थान मे जहां शोर गुल्ल न होता हो उस स्थान में एकासन कुश अथवा मृग छाला बिछा दीजिये उस पर आप बैठ जाइये श्री गुरू तथा परमात्मा का स्मरण करके दाहिने अंगुठा से दहिना नासिका को दबा करके बाये नासिका से स्वास भीरत को खीचिये। धीरे धीरे जब वायु पेट में भर जाय तो बांये नासिका को अनामिका कनिष्टा से दबा कर दहिने नासिका से वायु धीरे धीरे छोड़ दीजियेगा इसी तरह से बांये नासिका को अनामिका कनिष्टा से दबा करके दाहिने नासिका से वायु खींचिये तो बांये से छोड़िये इसमें कुम्भक नहीं किया जाता इसका नाम नाड़ी शुद्धि प्राणायाम है जैसे बांये से खीचिये दहिने से छोड़िये दहिने से

खींचिये तो बांये से छोड़िये यह एकावृत्ति हुआ। इस प्रकार तीन पांच या सात आवृत्ति करने से जितने तंतु नाड़ी के है वह सब शुद्ध हो जाती है। इसके बाद आप अपने नासिका के अग्र भाग को देखिये अर्थात् अभ्यास कीजिये स्वास बन्द करके एक मिनट तक ॐकार स्मरण करते रहिये फिर बन्द करके कीजिये इस प्रकार अभ्यास को बढ़ाइयेगा तो कुछ समय में नासिकाग्र भाग से भृगुटी में स्मरण होने लगेगा तो आप भृगुटी के मध्य में प्रणव का स्मरण कीजिये कुछ काल स्मरण कीजिये, करते करते आप सर्वदा इसी प्रणव अर्थात ॐकार में आपका मन लीन हो जायगा तो सारे संसार अर्थात शरीर के कर्मों का कुछ नहीं दिखाई पड़ेगा। एक बात ध्यान में रखिये बैठने के समय स्वस्तिकासन अर्थात (उकूरू मुकुरू) बैठियेगा जिसमें शरीर गरदन और सिर बराबर रहे। यह अभ्यास करके उसके बाद लिखा गया है। इसी से सुषुम्ना खुल जाती है अर्थात कुण्डलिनी जाग्रत हो जाती है उसके बाद जब शरीर का परिवर्तन अर्थात पञ्च तत्व प्राप्त के समय ब्रह्माण्ड को भेद न करके ब्रह्म ब्रह्म में लीन हो जाता है ब्रह्माण्ड के द्वार गया तो उत्रायण में गया और अन्य स्थानों से दक्षिणायन में गया। आशय यह की श्री कृष्ण जी ने लिखा है कि उत्रायण में शरीर त्याग होने से शरीर से मुक्त होकर जाना होता है और दक्षिणायन में शरीर त्याग होने से से बंधन हो जाता है। चन्द्रस्वर शुक्ल पक्ष है। और सूर्य स्वर कृष्ण पक्ष है। योगियों ने कहा है—

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥

गी० अ० ८ श्लो० २१

टी०—और जो वह अव्यक्त भावको ऐसे कहा गया है उस ही अक्षर नामक अव्यक्त को परम गति कहते हैं। (तथा) जिस सनातन अव्यक्त भावको प्राप्त हो कर (मनुष्य) पीछे नहीं आते हैं वह मेरा परमधाम है। शं० अव्यक्ताक्षर क्या है परम गति क्या है कि जिसको पाकर योगी फिर इस संसार में नहीं आता है। स० ॐकार जो है वही अव्यक्त अक्षर है जिस योगी को भृगुटी में अभ्यास के द्वारा प्राप्त हो गया वही परमधाम है उसको पाकर जीव संसार में नहीं आता है अर्थात संसार के प्रपंच से नहीं लिप्त होता है और वहीं पुरुष और ईश्वर में कोई भेद नहीं है। भृगुटी ही परमधाम है अव्यक्त अक्षर ही ब्रह्म है पाने वाला ही सर्वदा मुक्त है।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धि र्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥

गी० अ० ३ श्लो० ४२

टी०—इन्द्रियों के परे (श्रेष्ठ बलवान् और सूक्ष्म) कहते हैं (और) इन्द्रियों से परे मन है और मन से परे बुद्धि है और जो बुद्धि से (भी) अत्यन्त परे वह (आत्मा है) शं—इन्द्रि मन और बुद्धि के परे आत्मा कैसे हैं। स० जैसे मकान के ऊपर छिद्र हो

गया है उसके सामने सूर्य का किरण आती है तो उसी छिद्र द्वारा प्रकाश जाता है वह छिद्र वंशी के समान गोला है उसी में से कण निकलता है उसी को अणु कहते हैं उसको नेत्र देखता है परञ्च मन गणना नहीं करता है और बुद्धि का काम निश्चय करना है सो उस अणु को निश्चय नहीं कर सकता है। और जल में लहर चलती है नेत्र का गुण देखना है सो वह नहीं देख सकता कि लहर किस जगह से उठी किस जगह में लीन हो गई मन चञ्चल के कारण लहर को गणना नहीं कर सका इससे इन्द्रियों में नेत्र के परे मन हुआ और बुद्धि का गुण निश्चय करना है सो वह निश्चय नहीं कर सकी कि जल की लहर कहाँ से आई और कहां गई इससे मन के परे बुद्धि हुई बुद्धि के परे जो है वही आत्मा है। अर्थात् सबका कारण मन है मुख्य जल है।

सर्वेन्द्रिय गुणा भाषं सर्वेन्द्रिय बिवर्जितम् ।
असक्तसर्वभृच्चैव निर्गुणं गुण भोक्तृच ॥

गी० अ० १३ श्लो० १४

टी०—और सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों को जानने वाला है (परन्तु वास्तव में) सब इन्द्रियों से रहित है तथा आसक्ति रहित (और) गुणों से अतीत (हुआ) भी (अपनी योग माया से) सबको धारण पोषण करने वाला और गुणों को भोगनेवाला है। शं०—वह आत्मा सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों को जानने वाला और सब इन्द्रियों से रहित तथा आसक्ति रहित और गुणों से अतीत अपनी योग माया से सबको धारण पोषण करने वाला

और गुणों को भोगने वाला कैसे है। स० जैसे छाया शरीर से ही है परन्तु शरीर से अलग है वह छाया आसक्ति रहित और गुणों से अलग हुआ भी शरीर के गुणों को भोगने वाला हैं अर्थात् जैसे चलना उठना और खाना पीना इत्यादि होता है उसी प्रकार छाया भी करती है। परन्तु है अलग इसी प्रकार आत्मा से सब शरीर और इन्द्रियों से सम्बन्ध होते हुये भी अलग है।

ॐ तत्स दिति श्री जीवन्मुक्त गीतायां श्रीकृष्णार्जुन संवादे प्रणव दर्शनोनाम तृतीयोऽध्यायः—

नतद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद्गत्वा ननिवर्तन्ते तद्धाम परमं ममः ॥

गी० अ० १५ श्लो० ६

टी०—और उस स्वयं प्रकाश मय परम पद को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है न चन्द्रमा (और) न अग्नि ही प्रकाशित कर सकती है (तथा) जिस परम पद को प्राप्त होकर (मनुष्य) पीछे संसार में नहीं आते हैं वही मेरा परम धाम है शं० वह कौन परम धाम है और परम पद है की जिसको मनुष्य पाकर फिर संसार में नहीं आता है। सं० अब यहां परम पद है भृगुटी में ॐ कार का चिन्तन के बाद उसी ॐ कार में श्रीकृष्ण जी की मूर्ती है जब यह दृष्टि में आ जाती है वही परम धाम और परम पद है वही अव्यक्त अतीत परम धाम है।

अब परम पद का लक्षण

निर्मानमोहाजित सङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसञ्ज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥

गी० अ० १५ श्लो० ५

टी० नष्ट हो गया है मान और मोह जिन का (तथा) जीत लिया है आसक्ति रूप दोष जिसने और परमात्मा के स्वरूप में है निरन्तर स्थिति जिनकी (तथा) अच्छी प्रकार से नष्ट हो गई है कामना जिनकी (ऐसे) सुख दुःख द्वन्दों से बिमुक्त हुये ज्ञानी जन अविनाशी परम पद को प्राप्त होते हैं।

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मना ॥

गी० अ० ११ श्लोक १२

टी —और हे राजन् आकाश में हजार सूर्यों के एक साथ उदय होने से उत्पन्न हुआ (जो) प्रकाश होवे वह (भी) उसी शिव स्वरूप परमात्मा के प्रकाश के सदृश कदाचित् होवे। शं० विश्व रूप परमात्मा कौन है जहां पर सहस्त्र सूर्य का प्रकाश होता है। स० ॐकार में श्रीकृष्ण जी की प्रतिमा प्रत्यक्ष हो जाने पर वही विश्वरूप परमात्मा है इसको भृगुटी में देखनेसे सहश्र सूर्य चन्द्रमा और अग्नि का तेज नहीं प्रकाश करता है। शं० सूर्य चन्द्रमा और अग्नि कैसे नहीं प्रकाश करते हैं। सं० जैसे कि जब आकाश में विजुली चमकती है तो सूर्य चन्द्रमा और अग्नि का प्रकाश उसी

बिजुली में मिल जाता है। उसी प्रकार से योगियों को पर ब्रह्म परमात्मा का प्रकाश हो जाने पर सूर्यादि के तेज मिल जाते हैं अर्थात् सुषुम्ना द्वारा बिजुली के चमक में बाह्य के प्रकाश उसी में मिल जाते हैं तो संसार प्रपञ्च स्त्री पुत्रादि के सब दूर हो जाते हैं।

मन्मना भवमद्भक्तो मद्याजीमां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैव मात्मानं मत्परायणः॥

गी० अ० ६ श्लोक ३४

टी०—केवल मुझ सच्चिदानन्द वासुदेव परमात्मा में ही अनन्य प्रेम से नित्य निरन्तर अचल मन वाला हो (और) मुझ परमेश्वर के ही श्रद्धा प्रेम सहित निष्काम भाव से नाम गुण और प्रभाव के श्रवण कीर्तन मनन पठन पाठन द्वारा निरन्तर भजने वाला हो (तथा) मुझ शंख चक्र गदा पद्म और कीरीट कुण्डल आदि भूषणों से युक्त पीताम्बर बन माला और कौस्तुभ मणि धारी विष्णु का मन वाणी और शरीर के द्वारा सर्वस्व अर्पण करके अतिशय श्रद्धा भक्ति और प्रेम से विश्वलता पूर्वक पूजन करने वाला हो (और) मुझ शक्तिमान् विभूति बल ऐश्वर्य माधूर्य गंभीरता उदारता वात्सल्य और सुहृदता आदि गुणों से सम्पन्न सबके आश्रय रूप वासुदेव को विनय भाव पूर्वक भक्ति सहित साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम इस प्रकार मेरे शरण (तू) आत्मा को मेरे में एकी भाव करके मेरे को ही प्राप्त होवेगा। शं० यह सब तो साकार में घटना होती है। सं०—यह साकार रूप प्रणव में

चिन्तन न करना साकार और निराकार दोनों एकी भाव है जैसे सूर्य और उनके किरण साकार से ही निराकार होता है। ॐकार में श्रीकृष्ण जी का साकार है जिसमें यह सब आभूषणादि है आप अपने भृगुटी में ॐकार का अभ्यास कीजिये पूर्व में कह गये हैं उसी ॐकार में श्रीकृष्ण जी का साकार रूप प्रत्यक्ष हो जाता है। बाह्य साधन में श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन को अभ्यास कराया है जिससे की अर्जुन को इसी अभ्यास से प्रत्यक्ष रूप देखा हैं इसी से माया सम्बन्धी कर्मों से मुक्त होकर महाभारत किया उससे अर्जुन का भ्रम दूर होगया है। योगियों ने इसी साधन को स्वयं करके संसार से मुक्त अर्थात जीवन्मुक्त हो जाते हैं।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

गी० अ० ६ श्लो० ३०

टी०—और जो पुरुष सम्पूर्ण भूतों में सबके आत्मस्वरूप मुझ बासुदेव को ही (व्यापक) देखता है और संपूर्ण भूतों को मुझ बासुदेव के अन्तरगत देखता है उसके (लिये) मैं अदृश्य नहीं होता हूं। सं० बासुदेव को कहां देखै। सं० ॐकार में जो बासुदेव हैं उन्हीं को देखना प्रणव को भृगुटी में देखना।

सर्व भूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥

गी० अ० ६ श्लो० ३१

टी०—इस प्रकार जो पुरुष एकी भाव में स्थित हुआ संम्पूर्ण भूतों में आत्म स्वरूप से स्थित मुझ सच्चिदानन्द घन बासुदेव को भजता है वह योगी सब प्रकार से वर्तमान हुआ भी मेरे में बर्तमान है। शं० किस प्रकार सब जीओं में आत्म-स्वरूप दीखै। स० भृगुटी में ॐकार सहित पूर्ण रूप से देखना सर्वदा कर्मयोग है वह सत्य है सत्य ही ईश्वर है ईश्वर सब जीवों में व्याप्त है उसी का प्रकाश है नित्य निरन्तर इसका अभ्यास करना।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन !
सुख वा यदि वा दुःख स योगीं परमो मतः ॥
गी० अ० ६ श्लो० ३२

टी०—और हे अर्जुन जो योगी अपनी सदृश्यता से संपूर्ण भूतों में सम देखता है और सुख अथवा दुःख को (भी) सब में समान देखता है वह योगी परम श्रेष्ठ है। शं० अपने समान सब जीवों में कैसे देखें और सुख दुःख को समान कैसे जानता है। स० जैसे पृथ्वी पर गहरा खनिये अथवा ऊँचा बनाइये और शौच कीजिये अथवा मल कीजिये न तो खनने वाले को दोसी कहैंगे न तो ऊँचा बनाने वाले को श्रेष्ठ मानेंगे और न तो हवन करने से सुखी और न मल त्याग वाले से दुखी होगी।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेम वहाम्यहम् ॥
गी० अ० ९ श्लो० २२

टी०—और जो पुरुष अनन्य भाव से मेरे में स्थित हुये भक्त जन मुझ परमेश्वर को निरन्तर चिन्तन करते हुये निष्काम भजते हैं उन नित्य एकी भाव मेरे में स्थिति वाले पुरुषों का योग क्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूं।

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोक महेश्वरम्।
असंमूढ़ समर्थेषु सर्वं पापैः प्रमुच्यते॥

गी० अ० १० श्लो० ३

टी०—और जो पुरुष मेरे को अजन्मा अर्थात वास्तव में जन्म रहित (और) अनादि तथा लोकों का महान ईश्वर तत्व से जानता है वह मनुष्यों में ज्ञानवान् (पुरुष) सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है। शं० मुक्त किसको कहते हैं और अजन्मा अनादि कैसे जाना जाता है। स० जब आप का मन भृगुटी के बीच प्रणव में श्री कृष्ण जी का दर्शन निरन्तर स्थिर हो जायगा तो उस अवस्था में आपको संसार के जन्म मरण मालूम हो जायगा और मुक्त कहते हैं संसार के सुख दुःखादि का भान न हो अर्थात मैं कर्ता नहीं हूं यह मुक्त है और कर्ता हूं यही बन्धन है।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

गी० अ० ८ श्लो० ५

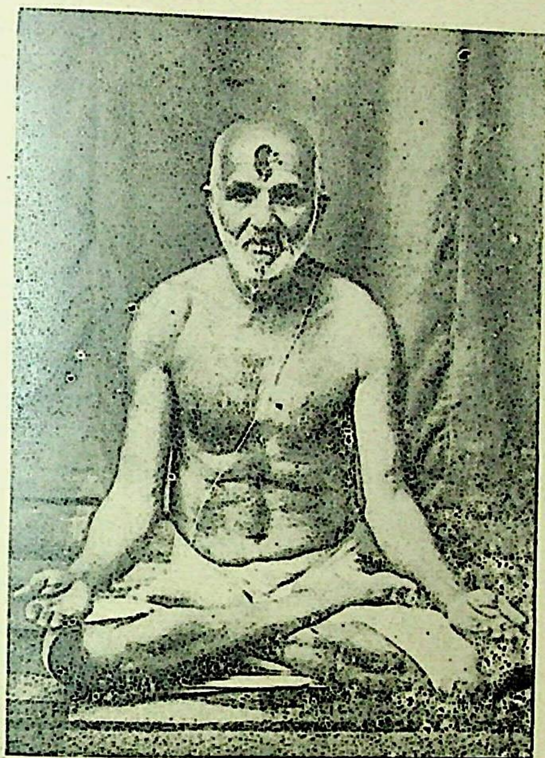
टी०—और जो पुरुष अन्तकाल मेरे को ही स्मरण करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है वह मेरे (साक्षात) स्वरूप को

प्राप्त हो जाता है इसमें (कुछ भी) संशय नहीं है। शं०—पूर्व में देह त्याग और प्रयाण काल श्रीकृष्ण जी ने कहा है दोनों शब्दों के माने शरीर के त्याग का अर्थ होता है। स० साधना वस्था अर्थात् अभ्यास काल में तो देह त्याग और प्रयाण काल का अर्थ यह है कि देह के अभिमान अर्थात् इन्द्रियों के कर्मों को करते हुये हम नहीं किया इसको त्यागकर ॐकार को भृगुटी में अभ्यास करते रहना. इसके बाद यहां अन्तकाल शरीर' अर्थात् पंचतत्व ब्रह्म में मिल जाती है और सर्वदा मुक्त है अर्थात् ॐकार के रूप में मिल जाता है।

ॐ तत्स दिति श्री जीवन्मुक्त गीतायां श्रीकृष्णा:र्जुन संवादे प्रत्यक्ष दर्शनोनाम चतुर्थोऽध्याय: ।।४।।



अथ जीवन्मुक्त गीता



चित्र ब्रह्मचारी जी का है

जब मन की चञ्चलता दूर हो गई तो उसी ॐकार में जो की भ्रूमध्य में है। उसी में श्री कृष्ण जी का दर्शन हो जाता है।

विशेष विवरण अध्याय ३ से जानना।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥

गी० अ० ६ श्लो० ३०

टी०—तथा और भी मेरी भक्ति का प्रभाव सुन यदि (कोई) अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त हुआ मेरे को (निरन्तर) भजता है वह साधु ही मानने योग्य हैं क्योकि वह यथार्थ निश्चय वाला है। शं० दुराचारी अनन्य भाव से कैसे जपे और क्या जपे कि वह साधु कहा जाता है । स० पाप पुण्य और गति मुक्ति त्यादि सब का कर्ता मन है यह पूर्व कह गये हैं वह दुराचारी का मन जब अभ्यास के द्वारा नासिकाग्र भाग और भ्रूमध्य तथा भ्रूमध्य ये साक्षात् श्रीकृष्ण जी का दर्शन हो गया अर्थात् मन उसी में लीन हो गया जैसे दूध में जल मिल जाने से एक रूप हो जाता है उसी प्रकार जिस दुराचारी का मन प्रणव युक्त परमात्मा में मिल जाता है वही साधु अर्थात् मुक्त कहा जाता है जैसे—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥

गी० अ० ६ श्लो० ३२

टी०—क्योंकि हे अर्जुन स्त्री वैश्य (और) शूद्रादि तथा पाप योनि वाले भी यो कोई होंवे वे भी मेरे शरण होकर (तो) परम गति को ही प्राप्त होते हैं ।

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति।
तथा तवामी नरलोकवीरा विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति॥
गी० अ० ११ श्लो० २८

टी०—और हे विश्व मूर्ते जैसे नदियों के बहुत से जल के प्रवाह समुद्र के ही सन्मुख दौड़ते हैं अर्थात् समुद्र में प्रवेश करते हैं वैसे ही वे शूर वीर मनुष्यों के समुदाय (भी) आपके प्रज्वलित हुये मुखों में प्रवेश करते हैं। शं० पापी पुण्यात्मा सब ईश्वर में मिल जाते हैं तो सत्कर्म क्यों किया जाता है। स० जो लोग पूर्व कहे हुये अभ्यास के द्वारा चिन्तन करते हैं वे संसार में नहीं आते क्योंकि जिनका मन ईश्वर में लीन हो गया है वे और जिन योगियों अर्थात् पापियों का मन साधन द्वारा ईश्वर में लै नहीं हुआ है उनका आना जाना लगा रहता है। जैसे नदियां समुद्र में जाकर फिर नदी नहीं आती है उसी प्रकार जिनका मन ईश्वर में लीन हो गया हैं वे संसार के प्रपञ्चादि से मुक्त हो जाते हैं अर्थात् छूट जाते हैं।

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः॥
गी० अ० ११ श्लो० २९

टी०—अथवा जैसे पतंग (मोह के वश हो कर) नष्ट होने के लिये जलती अग्नि में अति वेग से युक्त हुये प्रवेश करते हैं वैसे ही यह सब लोग भी अपने नाश के लिये आपके मुख में अति वेग से युक्त प्रवेश करते हैं।

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥

गी० अ० ३ श्लो० ३८

टी०—जैसे धूयें से अग्नि और मल से दर्पण ढक जाता है (तथा) जैसे जेर से गर्भ ढका हुआ है वैसे ही उस काम के द्वारा यह (ज्ञान) ढका है ।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥

गी० अ० ३ श्लो० ३९

टी०—और हे अर्जुन इस अग्नि (सदृश) न पूर्ण होने वाले काम रूप ज्ञानियों के नित्य वैरी ज्ञान ढका हुआ है । शं० हे कृष्ण ज्ञानियों का ज्ञान क्यों ढका है ! स० जो वाह्य के ज्ञानी हैं जैसे जिन्होंने जटा जूटादि धारण किया है उन्हीं के ज्ञान ढके हैं अन्यथा नहीं ।

यथैधांसि समिद्धाग्नि र्भस्मसात्कुरुतेर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥

गी० अ० ५ श्लो० २७

टी०—क्यों कि हे अर्जुन जैसे प्रज्वलित अग्नि इन्धन को भस्म मय कर देती है वैसे ही ज्ञान रूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मों को भस्म मय कर देता है शं० जब अग्नि रूपी ज्ञान सम्पूर्ण कर्मों को नष्ट कर देता है तो उसी में सत्कर्म भी नष्ट हो गया ।

स० जैसे अग्नि जो कुछ गंध सुगंध अच्छा बुरा सबको भस्म कर देता है उसी प्रकार से ज्ञान रूपी अग्नि जन्म जन्मान्तरीय दुष्कर्मों को और सत्कर्मों को जला कर इच्छा को दूर कर देती है इच्छा दूर कर ही ईश्वर में मिल जाना है।

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रंमिह विद्यते।
तेत्स्वयं योग संसिद्धःकाले नात्मनि विन्दति ॥

गी० अ० ५ श्लोक ३८

टी०- इस लिये संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसन्देह (कुछ भी) नहीं है उस ज्ञान को कितने काल (समय) से अपने आप समबुद्धि योग के द्वारा अच्छी प्रकार शुद्ध अन्तः करण हुआ पुरुष आत्सा में अनुभव करता रहता है अर्थात शरीर में स्वांस प्रति स्वांस केवल ॐ के अन्तर श्री कृष्ण जी का चिन्तन करता रहता है।

यथाकाश स्थितो नित्यंवायुः सर्वत्र गोमहान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्सानित्युप धारय॥

गा० अ० ६ श्लों० ६

टी०— क्योंकि जैसे (आकाश में उत्पन्न हुआ) सर्वत्र विचरने वाला महान् वायु सदा ही आकाश में स्थित है वैसे ही (मेरे संकल्प द्वारा उत्पति वाले होने से) सम्पूर्ण भूत मेरे में स्थित हैं। शं० किस आकाश में सम्पूर्ण जीवों मे देखै। स० जिस प्रकार से अभ्यास द्वारा अपने भृगुटी में स्थित है उसी प्रकार सब

जीवों के भृगुटी में देखना इसी को सब भूतों में स्थित कहते हैं। भृगुटी को अज्ञान चक्र कहते हैं। अर्थात मन वहां स्थित हो जाने से संसार के भावाभावों से मनुष्य अज्ञान हो जाता है यहां आकाश ब्रह्माण्ड को कहते हैं उसी में मन जीव के साथ लय हो जाता है अर्थात ब्रह्म और जीव की एकता हो जाती है।

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्॥

गी० अ० ९ श्लो० ८

टी० और हे अर्जुन कल्प के अन्त में सब भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं अर्थात प्रकृति में लय होते हैं और कल्प के आदि में उनको मैं फिर रचता हूं। शं० कैसे प्रकृति में लय करते हैं और कैसे फिर रचते हैं। सं० जिनका मन सर्वदा प्रकृति में लीन हैं उनका तो लय होना और उत्पन्न होना लगा रहता है जिनका मन मन में लीन हो गया है अर्थात भृगुटी में लय हो गया है उनको प्रकृति का गुण नहीं भासता है वैसे ही मीठा में मीठा का भास नहीं होता है। और संसारी मनुष्यों के लिये जैसे आम्र फल लगाया फूला फल खाया फिर लगाया फिर खाया उसी प्रकार जो लोग परमात्मा में सर्वदा लीन हैं उनका आवागमन नहीं होता है और जो लोग स्त्री पुत्रादि हमारा है ऐसा मानते उनका लय होना उत्पन्न होना लगा ही रहता है।

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।

सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥

गी० अ० १३ श्लो० १३

टी०—परन्तु वह सब ओर से ही पैरवाला (एवं) सब ओर से नेत्र शिर और मुख वाला (तथा) सब ओर श्रोत्र वाला क्योंकि (वह) संसार में सबको व्याप्त करके स्थित है। शं० किस प्रकार सबको व्याप्त करके स्थित है। स० जैसे आकाश वायु अग्नि, जल, पृथ्वी का कारण रूप होने से उनको व्याप्त करके स्थित है वैसे ही परमात्मा भी सबका कारण रूप होने से चराचर जगत को व्याप्त करके स्थित है। स० सब कारण रूप बनता है।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

गी० अ० ४ श्लो० ७

टी०—हे भारत जब जब धर्म की हानि (और) अधर्म की बृद्धि होती है तब तब मैं अपने रूप को रचता हूं अर्थात प्रकट करता हूं। शं० धर्म की हानि और अधर्म की बृद्धि कैसे होती है। जैसे स० यज्ञ, दान, तप, होमादि हो जाना बन्द होगया यही अधर्म है और जैसे इन्द्रियां अपना काम कर रही है जब रोग हो गया तो उनका काम बन्द हो गया जब वैद्य आकर उनका चिकित्सा किया फिर इन्द्रियां अपना अपना काम करने लगती हैं।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

गी० अ० ४ श्लो० ८

टी०– क्योंकि साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिये और दूषित कर्म करने वालों के नाश करने के लिये (तथा) धर्म स्थापन करने के लिये युग युग में प्रकट होता हूँ।

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥

गी० अ० ४ श्लोक १४

टी० क्योंकि कर्मों के फल में मेरी स्पृहा नहीं है (इसलिये) मेरे को कम लिपाय मान नहीं करते इस प्रकार जो मेरे को तत्व से जानता है वह (भी) कर्मों से नहीं बंधता है। अर्थात् जो लोग कर्म करने में फल की इच्छा नहीं करते हैं उनको संसार के अर्थात् शरीर सम्बन्धी कर्म का बन्धन नहीं होता है वह पुरुष सर्वदा मुक्त है मुक्त का भाव पूर्व कह गये हैं।

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥

गी० अ० ५ श्लो० ११

टी०—इसलिये निष्काम कर्म योगी (मन बुद्धि रहित) केवल इन्द्रिय मन बुद्धि और शरीर द्वारा भी आशक्ति को त्याग कर अन्तः करण की शुद्धि के लिये कर्म करते हैं।

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते॥

गी० अ० ५ श्लो० १२

टी०—इसी से निष्काम कर्म योगी कर्मों के फल को परमेश्वर को अर्पण करके भगवत् प्राप्ति रूप शान्ति को प्राप्त होता है। और कामी पुरुष फल में आशक्त हुआ कामना के द्वारा बंधता है अर्थात इच्छा नहीं जाती है। इच्छा किसी पदार्थ का न होना ही कर्मों के फल का त्याग है।

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्॥

गी० अ० ५ श्लो० १३

टी०—और हे अर्जुन वश में हैं अन्तःकरण जिनका उसके ऐसा संख्यां योग का आचरण करने वाला पुरुष (तो) निःसन्देह न कर्ता हुआ नव द्वारों वाले शरीर रूप घर में सब कर्मों को मन से त्यागता हुआ आनन्द पूर्वक (सच्चिदानन्द घन) परमात्मा के रूप में स्थिर रहता है।

न कर्तृत्व न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगः स्वभावस्तु प्रवर्तते॥

गी० अ० ५ श्लो० १४

टी०—और परमेश्वर (भी) भूत प्राणियों के न कर्ता पन को (और) न कर्मों को. न कर्मों के फल के संयोग को वास्तव में

रचता है किन्तु (परमात्मा के सकास से) प्रकृति (ही) वर्तती है। सर्व व्यापी परमात्मा न किसी के पाप कर्म को और न (किसी के) शुभ कर्म को भी ग्रहण करता है। माया के द्वारा ज्ञान ढका हुआ है सब जीव मोहित हो रहे हैं। जैसे मदारी खेल करता है वास्तव में सब झूठा है देखने वालों को सत्य प्रतीत होता है। शं० पाप पुण्य कैसे नहीं लगता है। स० जो प्राणी सर्वदा प्रणव के बीच में लीन है उनको पाप पुण्य स्पर्श नहीं करता है। जैसे कमल जल में सर्वदा स्थित है। परञ्च जल कमल को स्पर्श नहीं करता है। और सूर्य का किरण अच्छे बुरे सब पर जाता है परञ्च सूर्य को स्पर्श नहीं करता है।

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥

गी० अ० १४ श्लो० २५

टी०—तथा जो मान और अपमान में सम है (एवं) मित्र और वैरी के पक्ष में (भी) सम है वह सम्पूर्ण आरम्भों में कर्ता पन के अभिमान से रहित हुआ पुरुष गुणातीत कहाता है। शं० मान और अपमान से रहित कौन है। स० जिनको किसी कर्मों में मैं नहीं किया वही मान रहित है अर्थात ब्रह्म है और जिनको हम हैं वही मानी है।

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमांल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥

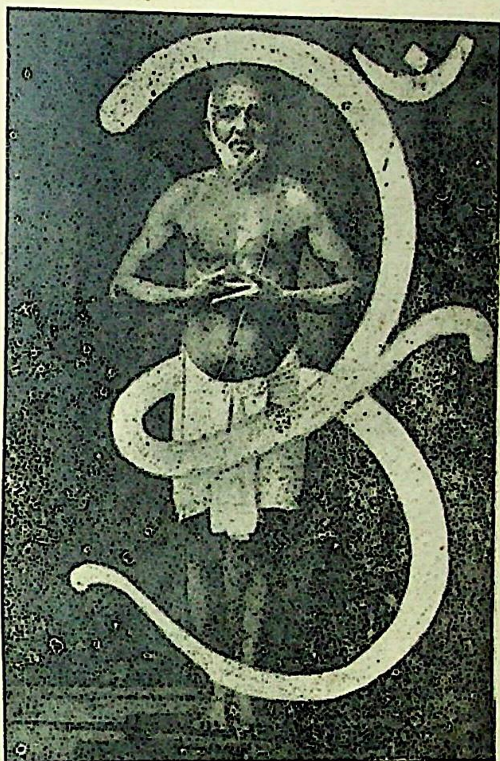
गी० अ० १८ श्लो० १७

टी०—और हे अर्जुन जिस पुरुष के (अन्तः करण में) कर्ता हूं (ऐसा) भाव नहीं है (तथा) जिसकी बुद्धि (साँसारिक पदार्थों में और सम्पूर्ण कर्मों में) लिपायमान नहीं हो वह पुरुष इन सब लोकों को मार कर (भी) वास्तवमें न (तो) मरता है (और) न पाप से बँधता है। शं० बन्धन और मुक्ति क्या है ? स० जैसे अग्नि वायु इत्यादि के द्वारा प्रारब्धवश किसी जीव की हिंसा होती दीखने में आवै तो भी वह वास्तव में हिंसा नहीं है। वैसे ही जिस पुरुष को अभिमान नहीं है और स्वार्थ रहित केवल संसार के हित के लिये ही जिसकी सम्पूर्ण क्रियायें होती हैं उस पुरुष के शरीर और इन्द्रियों द्वारा यदि किसी प्रकार की हिंसा होती हुई लोक दृष्टि में देखी जाय तो भी वह वास्तव में हिंसा नहीं है क्यों कि आशक्ति स्वार्थ और अहंकार न होने से किसी प्राणी की हिंसा होती ही नहीं तथा विना कर्तृत्व अभिमान के किया हुआ कर्म वास्तव में कर्म ही है इसलिये वह पुरुष पाप से नहीं बंधता है (इसलिये)।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचिः॥

गी० अ० १८ श्लो० ६६

टी०—इसलिये सर्व धर्मों को अर्थात सम्पूर्ण आश्रय को त्याग कर केवल मुझ सच्चिदानन्द घन बासुदेव पर परमात्मा की ही अनन्य शरण को प्राप्त हो मैं तेरे को सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा तूँ शोक मत कर। शं० कैसे सम्पूर्ण आश्रय को



चित्र श्री ब्रह्मचारी जी का है

जिन साधकों ने जीवन्मुक्त गीता का क्रमशः अभ्यास किये हैं वह योगी ईश्वर में मिल जाते हैं जैसे कि श्री कृष्ण जी ने महाभारत के अन्त में साकार रूप होकर निराकार ब्रह्म ॐ में लीन हो गये उसी प्रकार से योगियों ने शरीर क्षेत्र में जो काम क्रोधादि के युद्ध से मुक्त होकर उसी प्रणव में लीन हो जाते हैं इसी को जीवन्मुक्त कहते हैं अर्थात इस साधन से शरीर के रहते हुये सर्वदा उसी प्रणव में एकी भाव को प्राप्त हो जाते हैं विशेष विवरण चतुर्थ अध्याय से जानना।



त्याग दें। स० जैसे सर्प सर्वदा केचुर को धारण करके त्याग देता है उसी प्रकार संसार के सुख दुखः इन्यादि को इन्द्रि द्वारा होते हुये मैं नहीं किया इसका नाम त्याग है। ॐकार के मध्य में सर्वदा चिन्तन करना।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

गी० अ० ७ श्लो० ३

टी०—परन्तु हजारों मनुष्यों में कोई ही मनुष्य मेरे ही प्राप्ति के लिये यत्न करता है (और) उन यत्न करने वाले योगियों में भी कोई ही पुरुष (मेरे परायण हुआ) मेरे को तत्व से जानता है अर्थात यथार्थ मर्म से जानता है।

शं० तत्व किसको कहते हैं और कैसे जाना जाता है। स० तत्व वह है जैसे श्रुति कहती है। तत्व मसितत माने वह आसि है याने मैं और ब्रह्म एकी हूँ जैसे दर्पण के सामने होने से सारी शरीर और ब्रह्माण्ड अपने सामने प्रतीत होता है उसी ॐकार के मध्य में श्रीकृष्ण जी के अवयों अर्थात चरण कमलों को देखने से उन्हीं प्रणव में मिल जाना है यह फोटो से देखो।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्री विजयो भूतिध्रुवानीतिर्मतिर्मम॥

गी० अ० १८ श्लो० ७८

टी० हे राजन् विशेष क्या कहूं जहां योगेश्वर श्री कृष्ण भगवान हैं (और) जहां गांडीव धनुषधारी अर्जुन हैं वहाँ पर श्री विजय विभूति (और) अचल नीति है ऐसा मेरा मत है।

शं० वह स्थान कौन जहां पर योगेश्वर श्री कृष्ण जी हैं और अर्जुन कौन हैं। स० ब्रह्माण्ड यही स्थान है उसमें ॐकार के मध्य में श्रीकृष्ण स्थित हैं और धारण करने वाला यही अर्जुन है वहीं पर विजय विभूति और अचल नीति है ऐसा निश्चय है। अन्त में जिस प्रकार से श्री कृष्ण जी ब्रह्म हैं ॐकार यही ब्रह्म है महाभारत के अन्त में श्री कृष्ण जी ॐकार में लीन हो गये उसी प्रकार से योगी अभ्यास के द्वारा प्रणव में लीन हो जाता है।

ॐ तत्स दिति श्री जीवनमुक्त गीतायां श्री कृष्णार्जुन संवादे
जीव ब्रह्म लीनों नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

ब्रह्मोस्मि तत्वमसि अहं ब्रह्मास्मि।

लेखक-प्रकाशक और साधक

सरजू पारीण ब्रह्म कुल ब्रह्मवि ब्रह्मचारी जी एकहंसा जी
(*दूसरा नाम*) रामनसीब जी ॥ श्री श्री श्री

अन्तिम प्रेरणोत्कर्ष

जयजयति जय अखिलेश जिसकी लेश करुणा से सदा,
सम्प्राप्त होतीं सिद्धि सौम्य समृद्धि सारी सम्पदा,
होते अपावन पतित, पावन एक जिस के नाम से,
संसार के कल्याण की है याचना उस कृष्ण से,

प्रिय मातावों तथा साधकों से सविनय यह प्रार्थना है कि जो कुछ मेरे ऐसे पतितों से लिखने में जहां कहीं भूले टुटे अक्षर हों उनको सुधार कर क्षमा करें।

इस जीवनमुक्त गीता को केवल पाठ करने से संसार के बंधनों से अर्थात स्त्री पुत्रादि समस्त बंधनों से मुक्त हो जाते हैं। जिस प्रकार से अर्जुन को गीतोपदेश से राज्य सुख और मान प्राप्त हुआ है उसी प्रकार जीवन्मुक्त गीताभ्यास से।

को सुरक्षित

बंग

की अ

बिहारकी नदि

कलकत्ता, १ जुलाई। असम
बिहार तो बाढ़की गहरी चपेट
पड़े ही है अब पश्चिमी बंगालके
लिए चिंता उत्पन्न हो रही है।
पश्चिमी बंगालके लिए चिंता उत्पन्न
हो रही है। पश्चिमी बंगालके कूच
बिहार एवं जलपाई गुड़ी जिलोंमें
नदियां बड़े वेगसे बढ़ रही हैं।

कूच विहारमें तोरसी, गोदा-
धारी मानसी और धारलाका पानी
बराबर बढ़ावपर है।

नदीके तटवर्ती कितने ही गांवो
को खाली कराया जा चुका है।

जलपाई गुड़ी नगरके मध्य भाग
में स्थित कराला नदीका पुल गत
गुरुवारकी रातमें बह गया। अब
इस नगरके ४ पुलोंमें से एकसे
काम चलाया जा रहा है।

यहांका एक पुल गत वर्ष १
नवम्बरको गिराया था। वह झूल
वाला पुल (हैंगिंग ब्रिज) था।

डूबो तितर बितर करनेके
जिसने आंसूगैसका प्रयोग
।

भी बाढ़
का

बर बढ़ावपर

ना बाजारके पुलकी खतरनाक
कारण उसे पहले ही बाद
गया है।
ता नदीका पानी अब खतरे
से नीचे आ गया है।

जीरयामें आज मतदान

ल्जीयर्स, १ जुलाई। बताया
कि अल्जीरिया के ६० लाख
आज इस बात के लिए
कर रहे हैं कि वे फ्रांस को
देतेहुए स्वतंत्र रहना चाहते
नहीं। इस बात की चर्चा
अधिक मत सहयोग देने के
पड़ने वाले हैं। मत दाताओं
रह के मतपत्र दिये जाते हैं
एक मतपत्र सफेद रंग है
हां लिखा है और दूसरा
रंग की है जिसपर नहीं लिखा
गये लगों के मत डाकसे
हैं।

नताके कारण आज अपनी स्वतन्त्रता का प्रथम दिवस बहुत ही साधारण ढंगसे मना रहे हैं। स्वतन्त्रता संग्राम के ४८ वर्षीय नेता काइबण्डाने राष्ट्रिय ध्वज फहराकर स्वतन्त्रताका स्वागत किया। इस प्रकार ३७ वर्ष बाद यहांसे बेल्जियमका साम्राज्य उठ गया। २१ तोपोंकी सलामीसे आकाश गूंज उठा। युवकोंका झुण्ड सड़कों पर नाच रहा था।

अन्य नेता आन्द्रे मोहेवाने कहा है कि स्वतन्त्रता दिवस समारोह मुख्य रूपसे १५ अगस्तको मनाये जायंगे।

बोकारोक
अमेरिकी
रिपोर्ट

भुवनेश्वर
स्थित अमेरिकी
गालय थने विश
ले कहा कि
बोकारो इस्पा
सहायताका प्र
आर्थिक और
सर्वेक्षण करने
रिपोर्टपर निर्भ

११ वस्तुओंपर बिक्री
न चाहते हुए भी कर लगाना

लखनऊ, १ जुलाई। राज्य सरकार ११ वस्तुओंपर बिक्रीकर बढ़ा रही है। मुख्यमन्त्री श्रीगुप्तने कहा कि कोई भी सरकार कर बढ़ाना नहीं चाहती किंतु हमें जो कार्य करना है वह धनके बिना असम्भव है। योजनाओंकी सफलतासे ही देश समृद्ध होगा इसलिए इस पुनीत कार्यमें धन लगाना ही पड़ेगा।

रूसने
अमेरिका

मास्को,
वैज्ञानिकोंने
करनेवाला एक
मार्चसे आज
में यह छठां
इसी त
नवीन सन्त्र
परमाणु विस्फो